भाग ३

अमृतवाणी

गूढ़ पदों के सन्देश

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

हमारे प्रकाशन
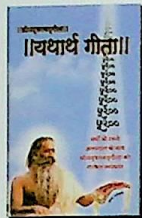
यथार्थ गीता -
'यथार्थ गीता' में श्रीकृष्ण की वाणी के आशय को भली प्रकार यथावत् समझाया है। यह एक कालजयी कृति है।
२८ भाषाओं में

अंग क्यों फड़कते हैं और क्या कहते हैं? -
मानव शरीर के विभिन्न हिस्सों में होने वाले स्पन्दनों का कारण और उनके संकेतों का विश्लेषण किया गया है जो कि साधना में काफी सहायक है।
४ भाषाओं में

जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति -
पूज्य गुरु परमहंस स्वामी श्रीपरमानन्दजी महाराज के जीवन के वृत्तान्त, उनकी अनुभूतियों एवं उपदेशों को संकलित किया है। साधकों के लिए यह बहुत उपयोगी ग्रन्थ है।
४ भाषाओं में
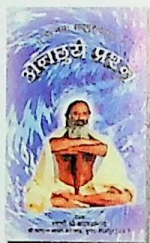
अनछुए प्रश्न -
वर्ण, मूर्तिपूजा, ध्यान, हठ, चक्र-भेदन और योग जैसे विषयों को स्पष्ट कर भ्रमित समाज का मार्गदर्शन किया गया है।
३ भाषाओं में
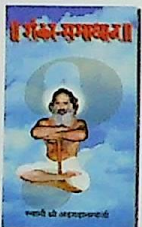
शंका समाधान -
समाज में प्रचलित सभी कुरीति, रुढ़ि, आडम्बर और अन्धविश्वासों का शमन एवं समाधान किया है।
५ भाषाओं में
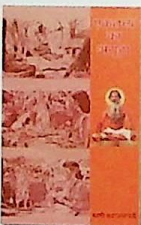
एकलव्य का अंगूठा -
शिक्षा-गुरु और सद्गुरु में अन्तर बतलाया गया है। शिक्षक, लोकजीवन की कला सिखाते हैं जबकि सद्गुरु जीवन में समृद्धि के साथ परमश्रेय की जागृति और उस परमपद की प्राप्ति कराते हैं जिससे पुरुष आवागमन से मुक्त हो जाता है।
३ भाषाओं में

भजन किसका करें?-
लोग गाय, पीपल, देवी-देवताओं, भूत-भवानी की पूजा, धर्म के नाम पर कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन सभी भ्रान्तियों का निवारण करते हुए स्पष्ट किया गया है कि सनातन धर्म क्या है? इष्ट कौन है? भजन किसका करें व कैसे करें?
६ भाषाओं में
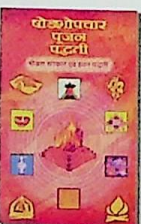
षोडशोपचार पूजन पद्धति -
इस पुस्तम में यह बताया गया है कि एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर कराकर, उस एक परमात्मा का चिन्तन सिखाना ही कर्मकाण्ड है।
३ भाषाओं में

हिन्दी भाषा में
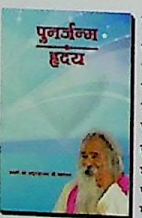
पुनर्जन्म
बौद्धिक स्तर पर यह एक उलझा हुआ प्रश्न है। मनुष्य जन्मा, जीवन-यापन किया; शरीर छूटा, चला भी गया; कुछ समझ हो नहीं पाया कि पुनर्जन्म है या नहीं। किन्तु योगाभ्यास की एक निश्चित ऊँचाई से मनुष्य जब गुजरता है तो उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि पुनर्जन्म है? मैं क्या था? आगे कहाँ जाना है?

हृदय
शरीर में हृदय कहाँ है जिसमें परमात्मा का निवास है? हृदय का परिचय तथा परमात्मा को जानने की सम्पूर्ण विधि पर प्रकाश डाला गया है। क्रमोन्नत तीन शरीर हैं- स्थूल, सूक्ष्म और कारण। क्रमशः कारण शरीर के अन्तिम स्तर पर साधन पहुँचता है, तहाँ ईश्वर का निवास है। यह पुस्तिका इन्हीं प्रश्नों का पूर्ण परिचय देती है।

हिन्दी भाषा में
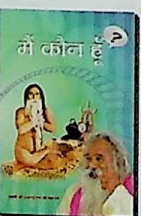
मैं कौन हूँ?
जन्म से हो नाना प्रकार के सम्बन्धों में भ्रम हो जाता है कि मैं कौन हूँ? यह जिज्ञासा यौगिक है। 'वासांसि जीर्णानि......'- शरीर एक वस्त्र है। यह शरीर छूटा, दूसरा मिला। तामस गुण के कार्यकाल में मृत्यु को प्राप्त हुआ पुरुष पशु, कीट-पतंग इत्यादि अधम योनि प्राप्त करता है। राजसी गुण के कार्यकाल में वह मनुष्य तन पाता है। सात्विक गुण के कार्यकाल में देव इत्यादि उन्नत योनि पाता है- हर हालत में योनि पाता है। अतः यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों है कि मैं कौन हूँ? वास्तव में जब द्रष्टा यह आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है तो वही आपका वास्तविक स्वरूप है।

।। ॐ नमः सद्‌गुरुदेवाय ।।

अमृतवाणी

सन्तों के गूढ़ पदों के सन्देश

पूज्य स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज के
मुखारविन्द से निःसृत अमृतवाणियों का संकलन

भाग – 3

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन
(रेल्वे सब-वे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन
(रेल्वे सब-वे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत
दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com
वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com

संस्करण– प्रथम संस्करण, मार्च, सन् 2012 - 5,000 प्रतियाँ
दिसंबर, सन् 2015 - 5,000 प्रतियाँ

मूल्य– रु. १००/०० मात्र

मुद्रक :

जॅक प्रिण्टर्स प्रा. लि.

जॅक कम्पाऊण्ड, दादोजी कोंडदेव क्रॉस लेन
भायखळा (पूर्व), मुम्बई - 400 027, भारत
फोन नं॰- (0091-22) 2377 2222
वेबसाइट - www.jakprinters.com

ISBN : 81-89308-85-8

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्त:प्रेरणा

गुरु-वन्दना

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ।।

जय सद्गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।।
योगी अद्वैष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।।
जय सद्गुरु.........भारी।।

।। ॐ ।।
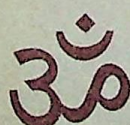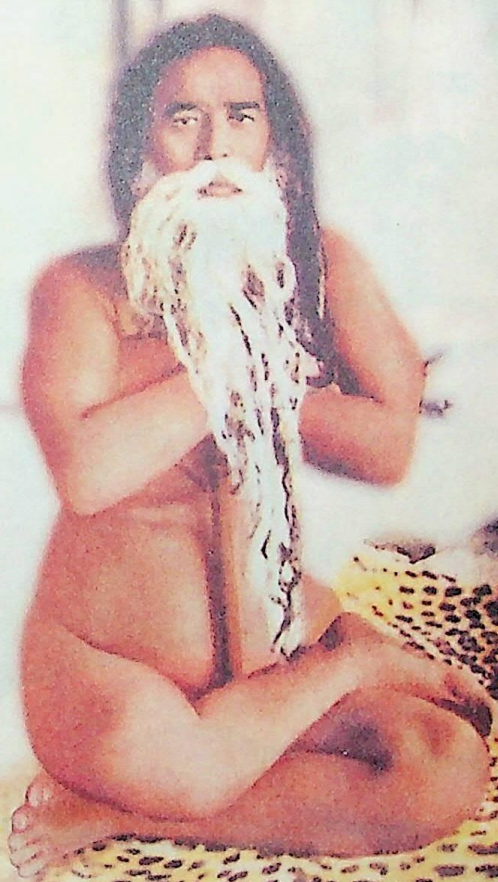
श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)

जन्म : शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (सन् १९११ ई०)

महाप्रयाण : ज्येष्ठ शुक्ल ७, वि०सं० २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई०

परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट
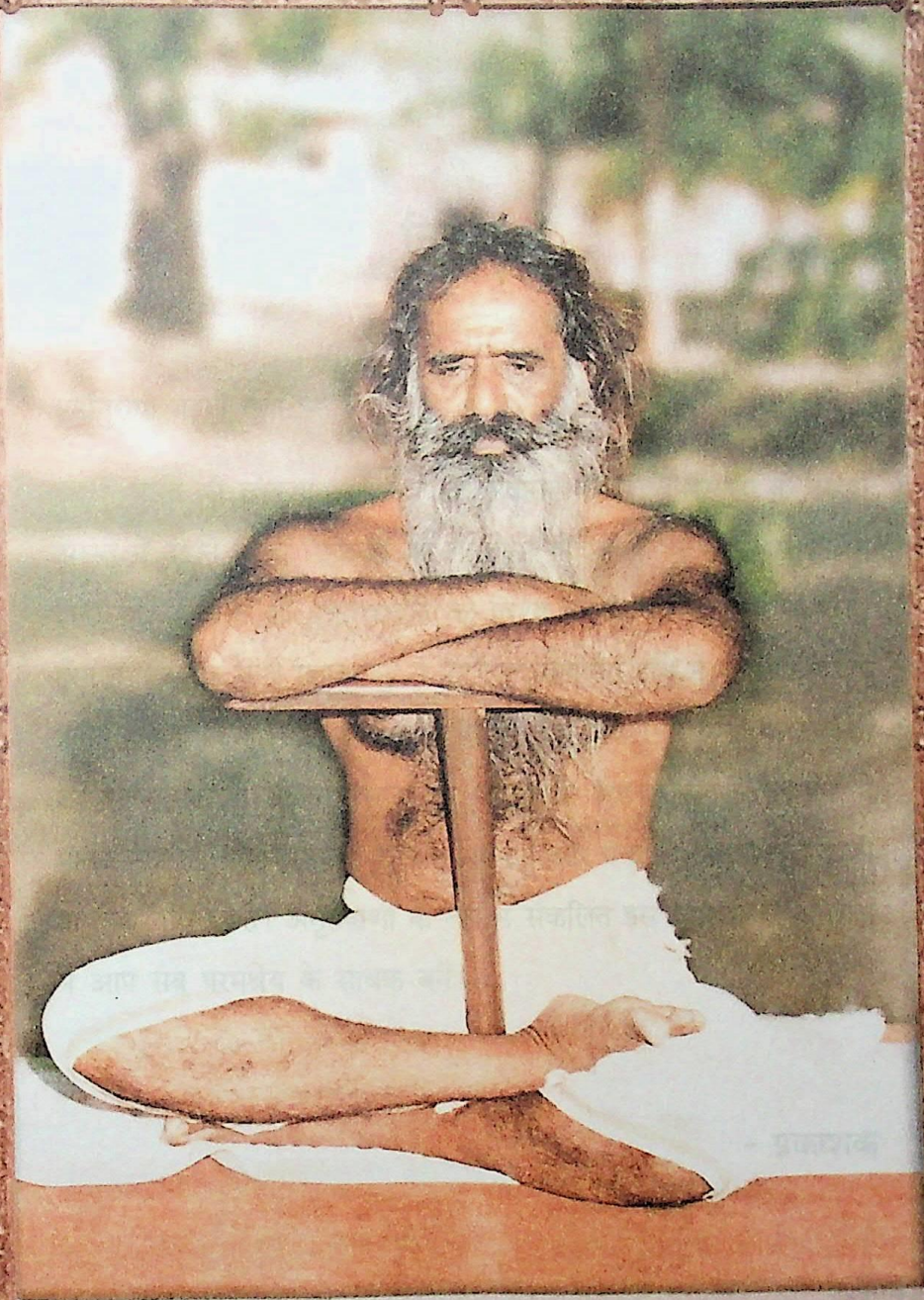
श्री स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज
(परमहंस महाराज का कृपा-प्रसाद)

निवेदन

धर्मानुरागी बहनो तथा भाइयो!

भारत की लोकगाथाओं में है कि सुकरात की शिष्य-परम्परा के मनीषी अरस्तू ने अपने शिष्य सिकन्दर को भारत से गीताज्ञानी गुरु लाने का निर्देश दिया था। गीता के ही एकेश्वरवाद को विश्व की विभिन्न भाषाओं में मूसा, ईसा तथा अनेक सूफी महात्माओं ने फैलाया। भाषान्तर होने से ये पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं किन्तु सिद्धान्त गीता के ही हैं। देश-विदेश के सन्तों के उपदेशों का तुलनात्मक परिशीलन प्रस्तुत कर स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज ने मानव-मात्र को एक परमात्मा के प्रति समर्पण और एक ही साधना-पद्धति की अमूल्य निधि दी है। अमृतवाणी के रूप में संकलित इस व्याख्या के आलोक में आप सब परमश्रेय के साधक बनें।

- प्रकाशक

अनुक्रमणिका

।। ॐ ।।

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 13)

न तसबीह काम आयेगी

(श्री परमहंस आश्रम शक्तेषगढ़ परिसर में प्रतिदिन प्रातः 7.30 से 8.30 बजे तक तथा सायं 3.30 से 4.30 बजे तक दैनिक सत्संग के अवसर पर दूर-दूर से पधारे हुए हजारों भाविक भक्तों को महाराजश्री दर्शन देते, उनके कल्याणार्थ कुछ उपदेश देते, उनकी ओर से आनेवाले आध्यात्मिक प्रश्नों का समाधान करते, उनकी समस्यायें सुनते तथा सबको आशीर्वाद प्रदान करते हैं। भजन और कीर्तन गायक भी समय-समय पर अपने भाव-प्रसून महाराजश्री को निवेदित करते ही रहते हैं। इसी क्रम में क्षेत्र के प्रसिद्ध गायक श्री करम अली ने सूफी सन्तों के उद्‌गार दो-तीन भजनों के माध्यम से प्रस्तुत किया जो महाराजजी को पसन्द आये, जिनका आशय बताते हुए कहा कि भजन की विधि संसारभर के महापुरुषों की एक जैसी रही है चाहे वह कहीं भी जन्मे हों बशर्ते कि वह महापुरुष हुए हों। धर्म देश-काल की सीमा में आबद्ध नहीं होता। धर्म का मुख्य स्वरूप एक है। उसमें की जानेवाली प्रक्रियायें एक, सुविधा और परिणाम भी एक जैसा हुआ करता है। अब प्रस्तुत हैं क्रमशः वे भजन....)

न तसबीह काम आयेगी, न माला काम आयेगा।

न अदना काम आयेगा, न आला काम आयेगा।
न फौजें साथ देंगी, ना रिसाला काम आयेगा।।
अन्धेरे में तो नेकी का, उजाला काम आयेगा।
जो देगा राहे हक में, वो निवाला काम आयेगा।।

नशा है जिनको दौलत का, समझ में पड़ गया पत्थर।
अभी तो भीड़ सी रहती है, अपनों की तेरे दर पर॥
तू कमाता जायेगा मरकर, ये खाते जायेंगे हँसकर।
जरा मेरी तरफ तो देख, क्या कहता है ये अम्बर॥
न जोरू काम आयेगी, न साला काम आयेगा।
जो देगा राहे हक में......॥

बुरा दिन आयेगा मिट्टी में मिल जायगी सब शोहरत।
जो करते हैं तेरी इज्जत, करेंगे तुमसे ही नफरत॥
कोई देगा नहीं पानी, जब घट जायगी तेरी ताकत।
अरे नादान इक पल में, लुटेगी तेरी सब दौलत॥
न चाभी काम आयेगी न ताला काम आयेगा।
जो देगा राहे हक में......॥

सवा नैजे पर खुरशीद मैहसर जगमगाएगा।
उस दिन रोना तुमको अपने आमालों पर आयेगा॥
अरे मगरूर तेरा सब, भरोसा टूट जायेगा।
बढ़ेगी तिस्नगी माँगेगा, पानी खाक पायेगा॥
न सुराही काम आयेगी, न प्याला काम आयेगा।
जो देगा राहे हक में......॥

इस भजन में आदमियों को नेकी करने और जरूरतमन्दों को दो ग्रास देने की बात कही गयी, जैसा गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं–

तुलसी इस संसार में, करि लीजे दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरि नाम॥

अब आइये भजन की पंक्तियों पर! तसबीह सत्तर या सौ दाना मोतियों या काँच की माला होती है जिसके माध्यम से मुसलमान फकीर ईश्वर की इबादत करते हैं। इस तसबीह का उन्हें बड़ा भरोसा होता है। बौद्ध लोग एक

प्रार्थना-चक्र घुमाया करते हैं, वह भी एक प्रकार की माला ही है। इस पद में फकीर कहते हैं कि न्याय के दिन न तो यह तसबीह काम आयेगी और न माला ही साथ देगी। उँगलियों पर चलनेवाली माला और जिह्वा पर चलनेवाला नाम परमात्मा के धाम में काम नहीं आता क्योंकि यह तो साधना की जागृति का आरम्भिक प्रयास मात्र है, उतने के लिये यह आवश्यक है। यह व्यर्थ भी नहीं है क्योंकि मन असंयत है, माया में रात-दिन रमा है। इस उच्छृंखल मन को परमात्मा की राह पकड़ाने के लिए माला या तसबीह सहायक है; किन्तु मन जब साधना की उन्नत श्रेणी पकड़ लेता है तो यह माला विस्मृत हो जाती है।

माला तो मन की भली, और काठ की भार।
माला में गुन होत तो, क्यों बेचे मनिहार॥

माला में यदि गुण होते तो हीरा पारखी जौहरी, ये चूड़ी बेचनेवाले मनिहारे उसे क्यों बेच रहे हैं? जब मन नाम का अभ्यस्त हो जाता है तब यह हाथ की माला छूट जाती है। उस अवस्था तक माला आवश्यक है। महापुरुष कहते हैं कि उन्नत स्तरों पर माला और तसबीह के माध्यम से किया हुआ भजन-सुमिरन काम नहीं आयेगा। माला स्तर के जपनेवालों के कुछ अपने भरोसे होते हैं; किन्तु यहाँ कहते हैं- **'न अदना काम आयेगा न आला काम आयेगा'**- छोटा-बड़ा कोई भी आपकी सहायता नहीं कर पायेगा। परिवार में अदना बच्चे या उनके भी बच्चे और आला नवजवान कर्मठ, न वही काम आयेगा। **'न फौजें साथ देंगी न रिसाला काम आयेगा'**- बड़ी से बड़ी सेना भी आपकी रक्षा नहीं कर पायेगी। अनेक सम्राट ऐसे हुए हैं जिनके महलों की सुरक्षा में लाखों पहरेदार लगे थे किन्तु-

आसपास जोधा खड़े, सबै बजावत गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल॥

आसपास योद्धाओं की कतार लगी हुई थी। सभी गाल बजाते, डींग हाँक रहे थे कि 'यमराज का मुँह मोड़ देंगे। हुजूर! आप बेफिक्र रहिये।' किन्तु

काल जब आया तो इतने पहरे के बीच से उठा ले गया। काल इतना प्रंचड है कि पहरों से भी उससे नहीं बचा जा सकता।

यूनान का सम्राट सिकन्दर अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। उसने एक सन्त का नाम सुन रखा था कि अवसर मिलने पर मैं कभी उन महापुरुष का दर्शन अवश्य करूँगा; किन्तु लगातार विजय अभियानों में उसे अवसर ही नहीं मिलता था। एक दिन वह युद्ध अभियान पर जा रहा था। रास्ते में उसे एक झोपड़ी दिखायी पड़ी। सेनापति घोड़े से कूद पड़ा और बोला– "श्रीमन्! जिन सन्त के दर्शन आप करना चाहते थे, वह यहीं धूप में बैठे हैं।"

सिकन्दर रथ से उतरा, उन्हें सादर प्रणाम किया। उन महापुरुष ने पूछा– "पहले यह बता तू कौन है?" सेनापति ने परिचय दिया– "यह यहाँ के सम्राट सिकन्दर महान हैं।" महात्मा ने कहा– "अच्छा, यह एक महीने से रात-दिन छकड़े भरकर अस्त्र-शस्त्र चले जा रहे हैं इस रास्ते से; क्या सब तुम्हारे हैं? सिकन्दर ने विनम्रता से कहा– "जी! मेरे ही हैं।" महात्मा ने पूछा– "सब सामग्री जा चुकी?" सिकन्दर ने कहा– "अभी तो पूरा रिसाला ही शेष है।" महात्मा ने कहा– "इतनी सामग्री लेकर तुम कहाँ जा रहे हो?" सिकन्दर से कहा– "अभी तो मैं तुर्की पर आक्रमण करने जा रहा हूँ।" महात्मा ने पूछा– "उसके पश्चात्?" सिकन्दर ने कहा– "उसके पश्चात् अरब, ईरान, अफगानिस्तान, भारत, फिर रूस और जापान – संक्षेप में पूरा विश्व!" महात्मा मुस्कराये– "तुम्हारे पास समय कहाँ है? देख, इस झोपड़ी में हमने दो आदमी की जगह बना रखी है जिसमें एक जगह तुम्हारे लिए है। यहाँ तुम्हारे लिये दो रोटी का प्रबन्ध भी है। यहीं रुक जाओ।"

सिकन्दर के अहं को बड़ी ठेस लगी। आज तक सभी तो उसकी प्रशंसा करते थे– 'क्या कहना! क्या रुतबा है!' आज यह महात्मा जी अच्छे मिले! यह कह रहे हैं, 'क्यों समय बर्बाद कर रहा है?' किन्तु हृदय में श्रद्धा के कारण सोच-विचारकर वह बोला– "महाराज! अब तो मैं चल चुका हूँ। लौट

कर आने पर आपके पास अवश्य आऊँगा।'' महात्मा ने कहा– ''अरे पगले! यदि नहीं लौट सका तब क्या होगा?''

भारी मन से सिकन्दर अपने अभियान पर निकल पड़ा। जहाँ-तहाँ लड़ाइयाँ हुईं। सिकन्दर उन सबमें विजयी रहा। भारत में उसने अभी प्रवेश ही किया था कि एक भारी युद्ध में उलझ गया। सेना में हल्की बगावत हो गई। वह तुरन्त लौट पड़ा। लौटते समय एक साधारण मुठभेड़ में सिकन्दर को एक जहरीला तीर चुभ गया। उस वेदना से सिकन्दर बीमार पड़ गया। उसने अपना संदेशवाहक उस महात्मा के पास इस सन्देश के साथ भेजा– ''मैं सीधा आपके पास ही आ रहा था, महलों में नहीं जा रहा था; लेकिन ऐसा लगता है मैं आप तक पहुँच नहीं पाऊँगा। मात्र बत्तीस साल की अवस्था में उसके प्राण पखेरू रास्ते में ही उड़ गये।

पाँव तले की खबर नहीं और लोग सौ बरस की योजना बनाकर बैठे हैं। सिकन्दर था तो विश्वविजेता किन्तु एक तीर ने उसकी जान ले ली– '**मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल।**' मरणासन्न सिकन्दर ने पंक्तिबद्ध सेना की ओर देखा। उसने कहा– भाइयो! हमने जो भूल की, पीछेवाली पीढ़ी उसे न दुहराये। जिन वस्तुओं को हमने इन हमलों से एकत्र किया– ये हीरे-जवाहरात, एक से बढ़कर एक अनमोल रतन, ये पेटियाँ– मेरी मृत्यु के पश्चात् इन्हें मेरी हथेली में रखकर देखना। कदाचित् मेरी मुट्ठी बन्द हो जाय और एक-आध नगीना मेरे साथ चला चले। यदि ऐसा नहीं होता तो लोग कोई शिक्षा ग्रहण करेंगे। इसीलिये सिकन्दर के पश्चात् किसी कवि ने कहा–

कहाँ गये वे दारा सिकन्दर, कहाँ वो बारहदरी गई।
चले गये सब अजल के मुख में, ना खुश्की ना तरी रही॥

सिकन्दर के अंतिम क्षणों में फौजें भी थीं, रिसाला भी था लेकिन '**न फौजें साथ देंगी न रिसाला काम आयेगा।**'– इस माया के अन्धकार में एकमात्र नेकी का उजाला ही काम आयेगा। संसार में कहीं भी तो नेकी दिखायी नहीं देती। इन्दिरा गाँधी सुचारु रूप से भारत का शासन चला रही

थी, नेकी ही तो कर रही थी; तो भी '**मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल।**' अपने ही घर में, अपने ही पहरे के अन्दर। ऐ फौजें, रिसाले साथ नहीं देते। काल-कराल से बचना है तो केवल एक रास्ता है नेकी! नेक है केवल परमात्मा! नेकी की राह है परमात्मा का पथ।

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।।

जोगु कुजोगु ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू।।

(रामचरितमानस, 2/290/1-2)

नेकी है तो केवल एक प्रभु के चरणों में प्रेम का प्रवाह! हृदय में यह उमंग, विरह की एक चिंगारी यदि प्रज्वलित हो जाय तो यह सत्पथ में है क्योंकि सत्य एकमात्र परमात्मा है। इसके अतिरिक्त जो कुछ है नश्वर है, धोखे की एक टटिया है। इस परमात्म-पथ में दो कदम चलते बन गया, कुछ समय देते बन गया- यही नेकी काम आयेगी।

निवाला कहते हैं ग्रास को। एक ग्रास भी यदि दान देते बन गया, ऐसे भिक्षु को जो प्रभु के पथ का पथिक है उसको भिक्षा देते बन गया, जरूरतमंद के पेट में दो दाना देते बन गया, वह अवश्य काम आयेगा। वह आपको काल से बचाने में और भगवान को प्रसन्न करने में आपका सहायक-सम्बल सिद्ध होगा।

प्रायः लोग कहते हैं कि हम भजन क्यों करें, हमें कमी किस बात की? हमारे पास तो बहुत गँजा है, हमें घट्टी क्या? इस पर सन्त कहते हैं- यह भूल है। आखिर सिकन्दर के पास क्या कमी थी? जो कुछ उसने अर्जित किया, कुछ भी काम नहीं आया।

नशा है जिनको दौलत का, समझ में पड़ गया पत्थर।

अभी तो भीड़ सी रहती है, अपनों की तेरे दर पर।।

जिन्हें यह नशा है कि हमारे पास फैक्टरियाँ हैं, हम तो साहब हैं, पूरी कम्पनी चलाते हैं, हम पचीस करोड़ का विदेश में सप्लाई करते हैं; पता नहीं

क्या-क्या नशा है? जिन्हें नशा है कि हमारा इतना बैंक-बैलेन्स, हमारे चार लड़के ऊँचे पोस्ट पर– जिन्हें दौलत का नशा है, उनकी समझ में वास्तव में पत्थर पड़ गया है। आज तुम्हारे चतुर्दिक तथा कथित अपनों की भीड़ लगी है। भय्या-भय्या, चाचा-चाचा– लाइन लगी हुई है। साधारण आदमी भी जब चुनाव में जीत जाता है, कदाचित् मंत्री बन जाता है तो रिश्तेदारों की कतार लग जाती है, पराया कोई नहीं; सब अपने, सब कहीं न कहीं से नजदीक होते चले जाते हैं। अपनी आभा, अपनी शान बरकरार रखने के लिये,

तू कमाता जायेगा मरकर, और ये खाते जायेंगे हँसकर।

तू और तल्लीन होकर कमाता जायेगा, रात-दिन एक कर देगा, बारह-दो बजे तक हिसाब लगाता रहेगा, ज्यादा कारोबार बढ़ने पर भोजन और नींद के लिये समय ही कहाँ बचता है– '**तू कमाता जायेगा मरकर, और ये खाते जायेंगे हँसकर**'– भाई वाह! क्या कहना! आज तो रसेदार बहुत ही अच्छा बना; और 'भाई! कल की मीटिंग में एक दावत भी रख दी जाय।', 'हाँ, यह ठीक रहेगा!'– ऐसे कार्यक्रम पास होते ही चले जाते हैं– '**वे खाते जायेंगे हँसकर।**'। किन्तु अब तक का संसार का रिकार्ड क्या कहता है?

जरा मेरी तरफ तो देख, क्या कहता है ये अम्बर।

जो कुछ भी संसार में घटित होता है, आसमान में, शून्य में विद्यमान रहता है। चिदाकाश या अम्बर में अब तक का लेखा-जोखा यही बता रहा है कि अन्तिम समय में–

न जोरू काम आयेगी, न साला काम आयेगा।

मनुष्य के पास माता-पिता, भाई-भतीजे सब तो हैं; लेकिन जब किसी की कमाई-धमाई अधिक मात्रा में बढ़ने लगती है तो सारा विचार खिंचकर पत्नी और साले की ओर चला जाता है। एक सज्जन बता रहे थे कि उनके एक साथी इंजीनियर मध्य प्रदेश में बड़े-बड़े बाँध बनाते रहे। उन्हें काफी कुछ कमीशन मिला तो भोपाल में घरवालों से छिपाकर एक आलीशान महल छोटे

साले के नाम बनवाया। जब पेंशन का समय आया, सरकारी आवास छोड़ उन्होंने साले से मकान खाली करने को कहा। छोटा साला अब जवान हो चला था। उसने कहा– "जीजा जी! आपको क्या कमी है? इतने दिनों से हम इसमें रहते आये, आदत-सी पड़ गई है। अब तो इसमें हम ही रहेंगे। आप कोई दूसरा बनवा लें।" सुनते ही साहब को हार्ट-अटैक हो गया।

सुत मानहि मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥

युवक अबला की ओर घूमते हैं, अबला उन्हें साले की ओर उन्मुख कर देती है, साला और पत्नी ही प्रिय लगने लगते हैं। माता और पिता की सेवा तो भगवान कराते हैं जो करना चाहिए। **'न जोरू काम आयेगी, न साला काम आयेगा'**– भला काम क्या आयेगा।

अँधेरे में तो नेकी का उजाला काम आयेगा।

नेक मार्ग, सन्मार्ग का प्रकाश ही आपके काम आयेगा। सद्मार्ग कौन? सत् क्या? तो,

सत्य वस्तु है आत्मा मिथ्या जगत पसार।

इस आत्म-पथ पर दिया गया तुम्हारा समय, बढ़ा हुआ कदम, दिया हुआ दान– चाहे स्वल्प ही क्यों न हो, वह अवश्य काम आयेगा; क्योंकि ईश्वर-पथ में कभी बीज का नाश नहीं है। यदि हमने आरम्भ कर दिया, दो कदम रख दिया तो माया में ऐसा कोई यन्त्र नहीं जो इसे मिटा दे। माया केवल देर कर सकती है, इसे मिटा नहीं सकती; क्योंकि वह सत्य है और सत्य को नश्वर मिटा नहीं सकता।

'नशा है जिनको दौलत का'– जगतानन्द आश्रम के पास बरैनी ग्राम है। वहाँ एक गुदरू दद्दा वयोवृद्ध सम्मानित रईस थे। वह बताते थे कि महाराज! हमारे पास इतना धन था कि मानो कुबेर अपनी गाड़ी में अशरफी भरकर अपनी अलकापुरी को जा रहा था और हमारे यहाँ उस गाड़ी का पहिया टूट गया हो। महाराज! हम इंग्लैण्ड तक मुकदमा लड़ आये हैं लेकिन

बुरा दिन आने पर आज वह कुछ भी नहीं रहा। आज दस-बीस बीघे खेती से जीवन-निर्वाह करना पड़ रहा है।

चलम् लक्ष्मीः चलम् आयुः, चलम् यौवन सर्वशः।
चला चली संसार है, एको धर्म निश्चलः॥

आयु चलायमान, धन-लक्ष्मी चलायमान! चला चली के इस संसार में निश्चल है एकमात्र धर्म– सत्य को हृदय में धारण करना। सत्य शाश्वत केवल एक परमात्मा है, उनको हृदय में धारण करना, उसके लिये चिन्तन में प्रवृत्त होना धर्माचरण है, यही मूल है।

बुरा दिन आयेगा, मिट्टी में मिल जायेगी सब शोहरत।

आज जो लोग भइया-भइया कर रहे हैं, भीड़ लगी है, लोगों का मुँह सुखने लगता है, आगे-पीछे तारीफ के पुल बन जाते हैं कि भैया आज न होते तो यह कार्य कभी सम्पन्न न होता; इसका श्रेय आपको है। कभी-कभी नेताओं की प्रशंसा इसी प्रकार होती है। इन्दिरा जी जब भारत की प्रधानमंत्री थीं, एक नेता बोला था– 'तेरे सुबह की जय, तेरे शाम की जय। तेरे नाम की जय, तेरे काम की जय।।' जब वह हार गयीं तब उन्हीं नेता से पूछा गया– 'क्या कहा था आपने?' वह बोले– मैंने कुछ नहीं कहा था। वही बात हुई 'बने-बने के सब साथी, जब वक्त पड़ा तब कोई नहीं।' यही इन पंक्तियों में भी है कि बुरा दिन आने पर इज्जत करने के स्थान पर नफरत करने लगते हैं। यह शानोशौकत एक पल में समाप्त हो जायेगा।

पाँचों नौबत बाजती, उठत छतीसो राग।
वे मन्दिर खाली पड़े, बैठन लागे काग॥

जहाँ राजा-महाराजाओं की तूती बोलती थी, जहाँ गूँजता रहता था– सावधान! खबरदार! महाराजाधिराज पधार रहे हैं, उसी किले में आज आप लोग बैठे हुए हैं। यहाँ कौवे बैठते थे, सियार और सर्प रहते थे। यह किला खण्डहर हो चला था। प्राचीन वैभव के ध्वन्सावशेष कक्ष खाली पड़े थे। वह

इस किले का बुरा दिन नहीं था तो क्या था? जहाँ जय-जयकार होती थी, दूकान-दूकान, घर-घर में जिनके चित्र पूजे जाते थे, नेपाल में ऐसा ही था, आज उसी राजा को सिंहासन त्यागना पड़ गया। आज वह जनसामान्य का-सा जीवन व्यतीत करने को विवश है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को वन-वन भटकना पड़ा। युधिष्ठिर-जैसे धार्मिक सम्राट को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी। यह कोई नयी बात नहीं है। समय-चक्र आज अच्छा है तो कल बुरा आ सकता है। आज समय बुरा है तो कल अच्छा अवश्य आयेगा। बुरा दिन आने पर अपने लोग भी नजरें बचाने लगते हैं कि वह अमुक आ रहा है, यहाँ से हट जायँ; दीवाल की ओर देखने लगते हैं कि कहीं चाय न पिलानी पड़ जाय।

कोई देगा नहीं पानी, घट जायेगी तेरी ताकत।

प्रायः बुजुर्ग लोग खटिया पर पड़े-पड़े कहते हैं– भैया, प्यास लगी है। बच्चे कहते हैं– हमेशा टाँय-टाँय करते ही रहते हो! चुपचाप पड़े रहो! गला नहीं चटका जा रहा है। कवि कहता है– **'अरे नादान, तेरी इक पल में लुटेगी सब दौलत'**– यही अपने एक पल में तेरी दौलत ले लेंगे।

न चाभी काम आयेगी, न ताला काम आयेगा।

बड़े-बड़े लॉकर, तिजोरियाँ, विदेशों में सड़ रहा काला धन– कुछ भी काम नहीं आयेगा। काश समय रहते ही सद्बुद्धि आ जाय। मनुष्य शरीर मिला है तो मानव का एक ही कर्त्तव्य है–

नर तनु पाइ विषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं।।

(मानस, 7/43/2)

कदाचित् हम विषयों में लिप्त हो गये तो हमने अमृत को बदल कर उसी के बदले विष माँग कर पी लिया। **'एहि तन कर फल बिषय न भाई।'** *(मानस, 7/43/1)* विषयों की सीमा कहाँ तक है? **'स्वर्गउ स्वल्प'**– स्वर्ग के ऐश्वर्यों तक विषयभोग हैं किन्तु **'अन्त दुखदाई'**– स्वर्ग पानेवाला भी

परिणाम में दुःख का ही संग्रह करता है। खाओ-पीयो, चार दिन नाच-गान, पुनः इसी अँधेरे में!

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।। *(गीता, 2/69)*

जगत् एक घोर अंधकारपूर्ण निशा है। सभी प्राणी इसमें अचेत पड़े हैं। इनमें से संयमी पुरुष जाग जाता है। इसी संयम का नाम है नेकी। इसी नेकी का उजाला अंत में काम आता है। अंतिम पंक्तियों में है–

सवा नैजे पर खुरशीद मैहसर जगमगाएगा।

जीवन थोड़ा है। एक दिन वह भी आयेगा जहाँ आयु के दिन पूरे हो जायेंगे। इस्लाम विचारधारा में मान्यता है कि कयामत के दिन न्याय के मैदान में सूर्य मनुष्यों के शिर से सवा बालिश्त या सवा नेजे पर आ जायेगा जिसकी ऊष्मा से लोग मर जायेंगे। विचारणीय है कि किसी का घर पहाड़ के ऊपर, किसी का नाले के किनारे! सबके शिरों से सवा बीता का अंतर बना पाना सूर्य के लिए कितना कठिन होगा? कोई युवक छः फीट का, उसका बच्चा तीन फीट का उन दोनों से सवा बालिश्त के अंतर का गणित सूर्य कैसे पूरा करेगा? ऐसा कुछ नहीं है। सूर्य का प्रभाव ताप देना है। शरीर का तापमान एक सौ पाँच-छः होते ही मौत आ जाती है। जहाँ छः-छः मास तक सूर्य के दर्शन नहीं होते वहाँ भी मौतें होती हैं। तात्पर्य यह है कि मैहसर अर्थात् न्याय के मैदान में जब खुरशीद (सूर्य) जगमगायेगा, अपनी पूर्ण कलाओं से तुम्हारी करनी का पर्दाफाश करेगा उस दिन तुम्हें अपने आमालों अर्थात् करनी पर रोना आयेगा कि प्रभु के चरणों में हम समय नहीं दे सके; ग्लानि होगी, पश्चाताप होगा।

अरे मगरूर तेरा जब सब भरोसा टूट जायेगा।
बढ़ेगी तिस्नगी माँगेगा पानी तो खाक पायेगा।।

तुम्हारा सारा भरोसा टूट जायगा। तापमान अधिक होने से मुँह से बोल भी नहीं सकेगा। तिस्नगी अर्थात प्यास बढ़ेगी। तू विकल होकर पानी माँगेगा।

पानी तो वाष्प बनकर उड़ गया क्योंकि सूर्य इतना समीप है। उसमें सुराही का जल भी तो सूख गया। प्राचीनकाल में ऐश्वर्य का सर्वोपरि प्रतीक सुराही और प्याला हुआ करता था। बादशाहों के यहाँ एक हुक्का, सुराही और प्याला महफिल में रहता था जैसे आजकल सोफा और शोरूम से ऐश्वर्य आँका जाता है। इन पंक्तियों में चेतावनी है कि–

न सुराही काम आयेगी न प्याला काम आयेगा।

जिस ऐश्वर्य में तुम खोये हो काम नहीं आयेगा।

मोहनिशा सब सोवनहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।

मोहरूपी रात्रि में सबलोग निश्चेष्ट पड़े हुए हैं। रात-दिन जो दौड़-धूप कर रहे हैं मात्र स्वप्न देखते हैं। यही तो हमने जुटाया।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरिभजन जगत सब सपना।।

(मानस, 3/38/5)

जगत् सपना है और हमने वही जुटाया है। हमने सपना ही देखा है। इस जगत्रूपी रात्रि के घोर अंधकार में तो केवल नेकी का उजाला काम आयेगा।

तुलसी जाके मुखन ते, धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पानही, मेरे तन को चाम।।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 14:1)

अगर है शौक मिलने का

अगर है शौक मिलने का तो हरदम लौ लगाता जा।
जलाकर खुदनुमाई को भसम तन पर लगाता जा।।

पकड़ कर इश्क का झाड़ू सफा कर हुजरा-ए-दिल को।
दुई की धूल को लेकर मुसल्लह पर उड़ाता जा।।

मुसल्ला फाड़ तसबी तोड़ किताबें डाल पानी में।
पकड़ तू दस्त फरिश्तों का गुलाम उनका कहाता जा।।
अगर है......।।

न मर भूखा न रख रोजा न जा मसजिद न कर सिजदा।
वजू का तोड़ दे कूजा शराबे शौक पीता जा।।
हमेशा खा हमेशा पी न गफलत में रहो एकदम।
नशे में सैर कर अपनी खुदी को तू जलाता जा।।
अगर है......।।

न बन बभ्भन न हो मुल्ला दुइन का छोड़ घर झगड़ा।
हुकुम है शाह कलन्दर का अनलहक तू कहाता जा।।
कहे मंसूर मस्ताना ये हक मैंने दिल में पहचाना।
यही मस्तों का मयखाना इसी के बीच आता जा।।
अगर है......।।

विश्व में महात्मा कहीं भी हुए हों, यदि प्राप्तिवाले हैं तो उनकी उपलब्धि, रहनी-गहनी एक जैसी रही है। ईसा मसीह ने अपने साधनकाल

में चालीस उपवास किये, भगवान के लिये रोते रहे। अपनी आयु के चौदह से उन्तीस वर्ष तक उन्होंने यहीं भजन किया था। अंग्रेज जबसे भारत आये, पता नहीं क्यों ईसा का यह इतिहास उन्होंने लुप्त कर दिया। उनके आरंभिक तेरह वर्षों का इतिहास बताया; तीसवें, इकतीसवें और बत्तीसवें– अंतिम तीन वर्षों का विवरण दिया कि वह यरूशलम में किस प्रकार थे? बीच के साधन-काल के विषय में वे मौन हैं जबकि यहाँ के लोग जानते हैं कि वह कहाँ रहे! वह जगन्नाथपुरी में रहे, लद्दाख में रहे, कश्मीर में रहे, अयोध्या भी आये। वह भारतीय मूल के महात्मा थे। उनकी नानी मालावार पर्वत क्षेत्र की थी जो तमिलनाडू में है। ईसा प्राप्ति के समीप पहुँच गये थे किन्तु दीन-दुखियों के प्रति दया भावना में उलझ गये। **'दया बिनु सन्त कसाई। दया करी तो आफत आयी।'**– प्राप्ति से पूर्व साधक लोकोपकार में उलझता है तो वह लक्ष्य से च्युत हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण के पीछे रात-दिन षड्यन्त्र चलते रहे, मृत्युदण्ड घूमता रहा; किन्तु प्राप्ति हो चुकी थी इसीलिये सब जगह साफ निकल गये। ईसा का अभी कुछ शेष था, उन्हें समाज-सुधार में नहीं कूदना चाहिए था। गुरु महाराज ने हमसे कहा था– जब तक भगवान आदेश न दें, समाज सुधार में नहीं कूदना चाहिए। भगवान आदेश दें तो लोकोपकार में अवश्य लगना चाहिए; क्योंकि यदि वह आदेश देते हैं तो उसकी व्यवस्था भी देते हैं, पूर्ति भी करते हैं। इसीलिये सामाजिक दुर्व्यवस्था को संज्ञान में लेते हुए भी सन्त अनजान बने रहते हैं।

इसी तरह के एक महात्मा हज़रत हुसैन मंसूर हल्लाज अरब में हुए। मुहम्मद साहब के समय में अरब भी भारत ही था। यह लुद्रावा गजनी और समरकंद के किले महाराजा गज और उनके वंश-परम्परावालों ने बनाया था। ये सब चन्द्रवंशीय, कृष्णवंशीय क्षत्रिय थे। मुहम्मद भी कुरुवंशीय थे इसीलिये कुरेश कहलाये। उन्होंने जो कुछ सत्य कहा है, गीता में है; उतना ही वह कह पाये। जब वह कहते हैं कि एक ईश्वर ही सत्य है अन्य कोई पूजनीय नहीं है, तो वह गीता ही पढ़ रहे होते हैं। गीता में भगवान कहते हैं

कि सिवाय आत्मा के अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है। वही एक सत्य है, परमतत्त्व है। गीता कहती है कि हृदय में दैवी सम्पद् का उत्कर्ष ही देवपूजा है। वाह्य देवताओं की पूजा आसुरी वृत्ति की देन है। मुहम्मद कहते हैं– ऐसा करनेवाले काफिर हैं। गीता कहती है– असुर हैं; यह कहते हैं– काफिर हैं, नास्तिक है। एक ही बात कहते हैं। यही कारण है भारत विश्वगुरु था और गुरु रहेगा।

यहीं से प्रेरणाप्राप्त महात्मा मंसूर भी थे। वह भी भारत में रहे थे। साधना की अधूरी अवस्था में ही वह भी सामाजिक कार्यों में रुचि लेने लगे, अपनी आन्तरिक उपलब्धियों को समाज में व्यक्त करने लगे। उन पर कोड़े बरसाये गये। बगदाद के खलीफा ने उन्हें शूली पर चढ़वा दिया। कहते हैं, उनके लहू के हर बूँद से 'अनलहक' अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि' की ध्वनि सुनायी दे रही थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् वहाँ का समाज मंसूर के पक्ष में हो गया है और आज भी सन्तों की परम्परा में मंसूर का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

महात्मा मंसूर के विचारों को इस पद में व्यक्त किया गया है कि यदि आपमें भगवान से मिलने की प्रबल उत्कण्ठा है तो केवल लौ लगायें। हर समय लौ लगायें। हर समय कैसे?–

जागत में सुमिरन करे, सोवत में लव लाय।
सुरत डोर लागी रहे, तार टूट ना जाय॥

लौ लगाने के रास्ते में एक बाधा आती है कि मैं ज्ञानी हूँ, ध्यानी हूँ, अच्छे कुल का हूँ। यही खुदनुमाई है, अहं है। मंसूर की सलाह है कि **'जलाकर खुदनुमाई को भसम तन पर लगाता जा।'**– भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा– अर्जुन! देहाभिमानियों की गति नहीं होती कि मैं पहलवान हूँ, विद्वान् हूँ, इतना गुणी हूँ। इसको जला डालो। वह अहंकार खाक हो जाय और शरीर पर उसकी राख दृष्टिगोचर हो क्योंकि यह भौतिक उपाधियाँ,

उपलब्धियाँ जन्म और मृत्यु के बीच का एक पड़ाव मात्र हैं। न पहले हमारी यह जाति थी न भविष्य में रहेगी। कागभुशुण्डि जी ने हजारों शरीर धारण किया, किस-किस पर अभिमान करते? गौतम बुद्ध भी पूर्व के कई जन्मों में पशु-पक्षियों की योनि में गये, समृद्धि के बीच रहे; किन्तु इन नश्वर उपाधियों में उन्हें कोई रुचि नहीं थी। यही मंसूर का भी आशय है कि अहं को जलाकर उसकी राख शरीर पर लगा लो, वैसा ही आपके आचरण में परिलक्षित होना चाहिए। अब हरदम लौ लगाने के लिये मन लगता नहीं इसलिये जरूरत है प्रेम की, श्रद्धा की। जिस साधक में विरह-वैराग्य और भगवान के लिये तड़पन नहीं है उसके लिये भगवान भी नहीं हैं। इसलिये अगली पंक्ति में है–

पकड़कर इश्क का झाड़ू सफा कर हुजरा-ए-दिल को।

इश्क अर्थात् श्रद्धा, समर्पण, प्रेम; इस प्रेम के झाड़ू से हृदय का अंतःपुर स्वच्छ करो। किसी अन्य की पंक्तियाँ हैं–

दिल का हुजरा साफ कर उसको बिठाने के लिये।
ध्यान गैरों से हटा सद्गुरु के आने के लिये॥

दुई अर्थात द्वैत का भाव साधना में बाधक है कि भगवान कहीं और रहते हैं और हम कहीं और हैं। वे समरकन्द या मक्का में हैं या बद्रीनाथ में रहते हैं। इस द्वैत को मुसल्ले पर बैठकर अर्थात् इबादत द्वारा नष्ट कर दें, हृदय में ही इष्ट को देखने का अभ्यास करें।

दिल के आईने में है तस्वीरे यार।
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली॥

आपका काम इतना ही है कि हर समय लौ लगाते जायँ। क्रमशः साधना की उन्नत अवस्थाओं में प्रवेश मिलता जायेगा। उस समय आसन, माला, शास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस पर कहते हैं–

मुसल्ला फाड़ तसबी तोड़, किताबें डाल पानी में।

साधना के आरम्भ के लिये यह आसन, माला, सन्तों के चरित्रों का अध्ययन, विरह के पद गुनगुनाना, भजन में मन लगाने के वाह्य उपकरण आवश्यक होते हैं किन्तु स्तर उठ जाने पर यह माला छूट जाती है।

माला तो मन की भली, और काठ की भार।
माला में गुन होत तो, क्यों बेचे मनिहार॥

यदि माला में ही गुण होता तो मनिहार उसे क्यों बेचता? इसलिए जब स्वाँस की माला पकड़ में आ गई तो मुसल्ला (आसन) उपयोगी नहीं रहा, माला भी अब तोड़ दे; 'इस किताब में यह लिखा है, उस किताब में वह लिखा है!'– इनके पचड़े में न पड़। जनश्रुतियों में है कि मौलाना रूम बहुत पढ़े-लिखे विद्वान् थे। उन्होंने विश्व-ज्ञानकोष (मसनवी) लिख डाला था। उनकी असाधारण प्रतिभा और श्रम की शोहरत सुन सन्त तवरेज उनसे मिलने गये। मौलाना रूम किताबों के बीच बैठकर कुछ लिख रहे थे। उन्होंने सन्त का अभिवादन किया और उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने की सामग्री लेने घर के भीतर गये। इसी बीच सन्त तवरेज ने उनकी मूल्यवान् पुस्तकों को दरवाजे पर बने जल के हौज में फेंकना शुरू किया। मौलाना रूम ने यह देखा तो शिर पकड़कर बैठ गये। उन्होंने मर्माहत हो कहा कि हमने विश्वज्ञान का सारांश जीवनभर परिश्रम कर लिखा था, आपने वह सब एक क्षण में नष्ट कर दिया। आप फकीर हैं, इसका मूल्य क्या जानें? क्या कहूँ आपसे? उन्हें दुःखी देख सन्त तवरेज हौज में उतर गये और किताबें निकाल-निकालकर मौलाना रूम की ओर फेंकने लगे। रूम साहब के आश्चर्य का ठिकाना न रहा क्योंकि पुस्तकों में जल का स्पर्श तक नहीं हुआ था। लिखी हुई इबारतों को कोई नुकसान नहीं पहुँचा था। मौलाना उन सन्त के चरणों में गिर पड़े और कहा– "हमने विश्व का ज्ञान लिखा किन्तु इस विद्या से मैं अनजान था। कृपया मेरा मार्गदर्शन करें।" तभी से यह कहावत प्रचलित हो गयी– 'क़िताबें डाल पानी में'। भजन हृदय से जागृत हो जाने पर ये किताबें कारगर नहीं होतीं, फिर तो भगवान की तरफ से रोज लिखा-लिखाया उतरा करता है। साधक देखता

रहता है कि भगवान कहते क्या हैं, चाहते क्या हैं! वे कहते जायँ, आप समझते जायँ, करते जायँ। इसके लिये करें क्या?–

पकड़कर दस्त फरिश्तों का गुलाम उनका कहाता जा।

महापुरुष– जो भगवान के अन्तरंग फरिश्ते हैं उनका हाथ पकड़ लो; छोड़ना नहीं और उन्हीं का गुलाम, सद्‌गुरु का दास कहलाते जाओ।

इस भगवत्पथ में बहुत भूखा-प्यासा रहने की जरूरत नहीं है। गीता में भगवान कहते हैं– यह योग न बहुत खानेवाले का या बिल्कुल न खानेवाले का ही सिद्ध होता है-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।। *(गीता, 6/17)*

न कम खायँ न अधिक खायँ, सन्तुलित आहार लें। विहार अर्थात् विचरण, थोड़ा परिश्रम का नियम बना लें अन्यथा रक्तसंचार शिथिल पड़ जायेगा, रोग घेर लेंगे, भजन नहीं होगा। '**युक्तचेष्टस्य कर्मसु**'– कर्म अर्थात् आराधना में जितनी चाहिए उतनी भरपूर चेष्टा रखें। '**युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।**'– उपयुक्त शयन-जागरण करनेवाले का ही योग सिद्ध होता है। अधिक मत सोओ। बिल्कुल नहीं सोते हो तब भी पागल हो जाओगे। स्वस्थ व्यक्ति को यदि पन्द्रह दिन निद्रा न आये तो सोलहवें दिन वह पागल अवश्य हो जायेगा। जागना परिश्रम है तो सोना श्रम का निवारण है। इसी आशय को मंसूर व्यक्त करते हैं–

न मर भूखा न रख रोजा न जा मसजिद न कर सिजदा।

अब मस्जिद में जाने या सिजदा करने की भी बहुत जरूरत नहीं है। फिर करें क्या?–

वजू का तोड़ दे कूजा शराबे शौक पीता जा।

कूजा कुल्हड़ को कहते हैं। नमाज या इबादत से पहले उस कुल्हड़ के जल से हाथ-मुँह धोते हैं। अरब में उन दिनों पानी की कमी थी। थोड़े से जल

से हाथ, उँगली से बाहों की ओर और इसी प्रकार पंजों से घुटने की ओर धोते हैं जिससे अनावश्यक जल बरबाद न हो। यह कोई धर्म नहीं है, न भजन है। यह उस समय की परिस्थिति थी। आज जल बहुतायत से है फिर भी हाथ-पैर धोने का वही तरीका चला आ रहा है। हृदय से भजन जागृत हो जाने पर इस तरह वजू करने या गुसल करने की आवश्यकता नहीं रहती इसलिये कूजा तोड़ दे, और करें क्या?–

'शराबे शौक पीता जा।'– इस्लाम में शराब पीना हराम है; किन्तु सन्त कहते हैं कि परमात्मा से मिलने का शौक भी एक नशा है, भजन एक खुमारी है। सब नशे आज चढ़ते हैं तो कल उतर भी जाते हैं किन्तु भजन एक ऐसा नशा है जो उत्तरोत्तर चढ़ता ही जाता है–

सभी नशे संसार के उतर जात परभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥

भजन एक नशा है। तुम उसी नशे में चूर रहो। यह भगत कहता है कि भजन का शौक हो जाने पर किसी स्थान या कर्मकाण्ड की अपेक्षा नहीं रह जाती इसलिये कूजा तोड़ दे, मस्जिद में आना-जाना छोड़ केवल भजन की शराब पी! यह तुम्हारे जीवन का शौक बन जाय। फिर मंसूर जैसे दीवानों के लिये तो–

हमेशा खा हमेशा पी न गफलत में रहो एकदम।

भजन ही भोजन है, इसे हमेशा खाते रहो। भजन एक नशा है, इसे हमेशा पीते रहो। लापरवाही से एक श्वास भी नाम से खाली न जाय। जो समय चला गया वह पुनः लौटकर नहीं आयेगा। गुरु महाराज कहा करते थे– 'भजन कदाचित् किसी दिन कम हुआ हो तो रात-बिरात लगकर उसे पूरा कर लो। भजन में कमी कभी सहन न करो। आज थोड़ा भजन छूटा, किसी दिन फिर थोड़ा छूटा तो कुछ दिनों में भजन सदा के लिये छूट जायेगा। 'जटा फकिरऊ आचरण गृहस्थऊ' इसलिये कभी भी गफलत में न रहो। सदा

सचेतावस्था में रहो। **'नशे में सैर कर अपने'**– यह नशा तुम्हारा अपना है, तुम्हारे ही हृदय से प्रकट हुआ है, किसी दूकान से खरीदा नहीं है। इसी में सदैव डूबे रहो और **'खुदी को तू जलाता जा'**– अपने अहंकार, दम्भ को जलाते रहो। यह खुदी ही माया है– **'मैं अरु मोर तोर तैं माया।'** *(मानस, 3/14/2)* माया को अपने पास टिकने न दें। ज्ञानाग्नि, संयमाग्नि में जलाते जायँ।

संसार में धार्मिकता का ढोंग करके लोग जीवन काट ले जाते हैं। पण्डित और मौलवी आपस में लड़ते ही रहते हैं। इन दोनों के घरेलू झगड़े में न पड़ो– **'न बन मुल्ला न हो बभ्भन दोउन का छोड़ घर झगड़ा।'**

'हुकुम है शाह कलन्दर का'– यदि आप नशे में सैर करते रहोगे तो कलन्दर अर्थात् फकीरों, परमहंसों के भी शाह भगवान से आदेश मिलने लगेगा। **'अनलहक तू कहाता जा'**– फिर तो 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति होने लगेगी। भगवान अब आपसे अलग नहीं है।

कहे मंसूर मस्ताना ये हक मैंने दिल में पहचाना।

मस्ताने मंसूर ने कहा कि हक को मैंने दिल में पहचाना है। वास्तविकता का दिग्दर्शन हृदय में हुआ–

सब घट मेरा साँइया, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी घट तासु की, जा घट परगट होय॥

उस घट के ऊपर मैं अपने को न्योछावर करता हूँ जिस हृदय में वह प्रकट हो जाते हैं। 'मैंने ही इस सत्य को जाना है'– ऐसी बात नहीं है। **'वही मस्तों का मयखाना'**– सृष्टि में जितने मस्त हुए हैं, महापुरुष जिन्होंने भगवान के नशे को पाया तो हृदय में ही पाया है। वही उनका मयखाना है जहाँ से नशा मिलता है। **'उसी के बीच चलता जा'**– तुम उसी के बीच चलते रहो। श्वास आयी तो 'ओम्', गयी तो 'ओम्'; क्रम न टूटे। मस्ताना वही है जो नशा पाता है। प्राप्ति के पश्चात् न हम रहे, न नशे लायक कोई चीज रही।

उस समय मंसूर की यही अवस्था थी। वह प्राप्ति के बहुत समीप थे। यदि प्राप्ति हो गयी होती तो शूली पर न चढ़ाये जाते। मीरा को क्यों नहीं शूली पर चढ़ाया गया? कोशिश तो बहुत की गई, जहर तक पिलाया गया किन्तु मीरा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

एक भिखारी मन्दिर की सीढ़ियों पर पन्द्रह दिनों तक बैठा रहा। वह एल्यूमीनियम का बड़ा वाला चुचका-पिचका कटोरा रह-रहकर खटखटाता रहा। दर्शनार्थी मंदिर में जाते, भिखारी पर भी दृष्टि पड़ती। वह मुँह घुमाकर चले जाते। किसी ने कुछ दिया ही नहीं। फिर उसने जगह बदली, मस्जिद के दरवाजे पर बैठने लगा। पन्द्रह दिनों तक उसने वहाँ भी श्रम किया। लोग देखते अवश्य थे, आगे बढ़ जाते थे। उसने गुरुद्वारे पर भी समय दिया, चर्च भी गया। उसे देखा सभी ने पर उसे कहीं भी कुछ न मिला। भटकते-भटकते वह एक मयखाने पर पहुँचा जहाँ शराब बिक रही थी, लोग पी रहे थे। वह मयखाने के दरवाजे के समीप वहीं कटोरा लेकर बैठ गया। लोग शराब के नशे में धुत निकलते, उस भिखारी की ओर निगाह पड़ते ही जेब में दो-चार बचे नोटों को निकालकर कहते– ले तू भी छान-घोंट! एक-एक करके कटोरा पूरा भर गया। तब वह हाथ जोड़कर बोला– वाह रे मालिक! रहते तो कहीं और जगह पर हो, पता कहीं और जगह का दे रखा है। इस प्रकार आरम्भिक पता तो मन्दिर-मस्जिद ही हैं, वास्तविक पता तो मयखाना है।

सद्गुरुओं का दरबार ही मयखाना है और संसार ही भिखारी है। **'दाता एक राम, भिखारी सारी दुनिया।'** शाश्वत, देने लायक यदि कहीं कुछ है तो इन्हीं सद्गुरुओं के पास है। भगवान श्रीकृष्ण इसीलिये कहते हैं कि तत्त्वदर्शियों के पास जाओ! वे तुझे ज्ञान का उपदेश करेंगे। ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को तू हृदय में अनुभव करेगा जहाँ परमात्मा का निवास है, जिसकी कृपा से तू शाश्वत परमधाम, अक्षय सुख और असीम शान्ति को प्राप्त कर लेगा। इसलिये,

न पीना हराम है न पिलाना हराम है।
पीने के बाद होश में रहना हराम है।।

भजन जागृत हो गया तो रात-दिन एक करके उसी में लग जाओ। जब हो कि सचमुच तुम्हारे पास है तो पिलाओ; वह जागृति सबको प्रदान करो। यह पिलाना भी जायज है, हराम नहीं है। तुमने कहा कि पीया और होश में भी बने रहे तो पीया ही कब? इसलिये पीने के पश्चात् होश में रहना हराम है। नशा चढ़ा ही नहीं और हम भक्त भी कहलाते हैं।

बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।।
(मानस, 1/11/3)

प्रश्न उठता है कि पीयें कैसे? पीये हुए की पहचान क्या है?

पीना ही है तो इस कदर पी।
कि हम पीयें, जहां के मुँह से बू निकले।।

इस प्रकार पीयो कि तुम गुफा में बैठकर शान्त-एकांत में पीयो और वह सबके हृदय में, घट-घट में, चिदाकाश में बोलने लगे। यह प्रचार, वह माध्यम– यह सब अनावश्यक हैं। जब वह प्रभु हृदय में उतर आयेगा - भगवान तो कण-कण में व्याप्त है – वह सबकी आत्मा में, जो पुण्यात्मा हैं उनके अन्तराल में स्वतः प्रसारित हो जायेगा, सूचना भेज देगा।

भगवान दत्तात्रेय एक महापुरुष थे। तितिक्षा उनकी रहनी थी। वह निराधार विचरण कर रहे थे। तीन उपवास-चार उपवास आये दिन की घटना थी। फिर भी वह मस्त थे क्योंकि उन्हें नशा था, वह पिये हुए थे। उनके चतुर्दिक अनायास भीड़ बढ़ने लगी। उन्होंने भगवान से पूछा– प्रभो! हमें तो कोई नहीं पूछता था। आजकल यह भीड़ क्यों हो रही है? भगवान ने कहा– लक्ष्मी जी तुम्हारी सेवा करना चाहती हैं। दत्तात्रेय ने कहा– भगवन्! लक्ष्मी जी को तो मैंने पुकारा नहीं! हमें उनकी जरूरत भी नहीं है, फिर वह क्यों सेवा करना चाहती हैं? भगवान ने बताया कि तुम्हारे हृदय में मैं जो आ गया

हूँ इसलिये वह तुम्हारे माध्यम से मेरी सेवा कर रही हैं। दत्तात्रेय ने कहा– प्रभो! एकान्त में आपके साथ जो सुख है वह इस भीड़भाड़ में कदापि नहीं है। अतः आप बने रहें, लक्ष्मी जी को विदा कर दें। भगवान ने कहा– मेरा चरण छोड़कर उनका और कोई ठिकाना भी तो नहीं है। जहाँ मैं रहूँगा, वह तो रहेंगी ही!

निरुपाय दत्तात्रेय भागने लगे। जहाँ भीड़ हो जाय वहाँ से रात को चुपचाप उठें और दूसरी जगह चले जायँ; किन्तु लक्ष्मी जी वहाँ पहले ही प्रबन्ध कर रखती थीं, वहाँ भी भीड़ विद्यमान रहती। तब दत्तात्रेय पहले संकल्प करते कि दस किलोमीटर पूरब जायेंगे और दस किलोमीटर पश्चिम बढ़ जाते, संकल्प के विपरीत भागने लगे। लक्ष्मी जी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भीड़भाड़ लिये-दिये वहाँ भी उपस्थित हो जातीं।

दत्तात्रेय बहुत झल्लाये। उन्हें तो भजन का नशा चाहिए था। भगवान ने उन्हें समझाया– "घबड़ाओ मत! अब यह माया नहीं है। अब यह मेरी इच्छा है। भजन का नशा करके तुम जिसे ढूँढ़ते थे, वह मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ। अब कहीं बैठ जाओ। लक्ष्मी तो सेवा करेगी ही।" दत्तात्रेय ने सोचा–देखें, लक्ष्मी कैसे सेवा करती है! उन्हें घूमते-घूमते गिरिनार पर्वत दिखायी पड़ा, बब्बर शेरों से भरा घनघोर जंगल! वह उत्तुंग पर्वत शिखर पर चढ़ते चले गये। बहुत ऊँचाई पर उन्हें एक झरना दिखायी पड़ा। वहीं वह धूना लगाकर बैठ गये। वहाँ से दस-पन्द्रह किलोमीटर तक कोई गाँव नहीं था। दूरदराज के लोगों को स्वप्न दिखायी पड़ने लगा कि इस पहाड़ के शिखर पर एक महापुरुष बैठे हैं। वहाँ झरना है, धूना है। दूसरे ने कहा– हमने भी ऐसा देखा है; उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने आशीर्वाद दिया। तीसरे ने कहा– मुझे स्वप्न में उनके पास त्रिशूल भी दिखायी पड़ा। चौथे ने कहा– हमें उनके तीन शिर दिखाई पड़े। लोगों ने सोचा, सबको एक जैसा स्वप्न क्यों दीख रहा है कि पहाड़ पर महापुरुष, नारायणस्वरूप! चलें, देखा जाय। लोग ग्यारह हजार सीढ़ियाँ बनाकर शिखर तक पहुँच गये। लोगों ने देखा, वह महापुरुष वहाँ बैठे थे।

अब वहाँ भक्तलोग जाने लगे। कोई गेहूँ का आटा ले जाता, कोई ज्वार-बाजरे का आटा। हर प्रकार का आटा, नमक, मिर्च जो भी आता, सब एक में मिलाकर टिक्कड़ बन जाता था। एक-एक मन का टिक्कड़, आज के वजन में 30-40 किलो का टिक्कड़ शाम को धूने में घुसाड़ देते थे, सुबह तक में टनाटन पका हुआ ब्रेड कुल्हाड़ी से काटकर, चाकू से काटकर सबको प्रसाद मिल जाता था। वही महात्मा का भी भोजन था। आज भी गिरनारी टिक्कड़ बनाने की परम्परा वहाँ यथावत है।

भाविक भक्तों में एक स्टेट (महोलगढ़) के राजा ने ताम्र पत्र पर लिखकर अपना राज्य ही दत्तात्रेय जी को समर्पित कर दिया। महाराज ने पूछा– यह क्या है? राजा ने कहा– भगवन्! अपना राज्य हमने आपको भेंट कर दिया। महाराज ने कहा– अरे! मैं राज्य लेकर क्या करूँगा? मैं साधु हूँ, सबकुछ छोड़ चुका हूँ। राजा ने निवेदन किया– भगवन्! क्षत्रिय बात से पीछे नहीं हटता, फिर दान को वापस लेने का तो प्रश्न ही नहीं है। हमने संकल्प कर दिया तो कर दिया। महाराज ने कहा– वह तो ठीक ही है; हमारे आदेश का पालन करोगे? राजा ने कहा– भगवन्! हुकुम करें तो मैं शीश भी दे दूँगा। महाराज ने कहा– अरे नहीं भाई! शीश रहेगा तब ही तो पालन करोगे। ऐसा करो, तुम हमारे दीवान (प्रधानमंत्री) बनकर राज्य-कार्य देखते रहो। जीवन-पर्यन्त सिंहासन के नीचे बैठकर शासन की देखरेख करो, कोई गड़बड़ी न होने पाये। जीवन में एकाध बार एक घंटे के लिये दत्तात्रेय भी वहाँ पहुँचे, उस गद्दी को ठोक-ठाँक कर, आशीर्वाद देकर चले आये। गोस्वामी जी ने लिखा है–

रिद्धि सिद्धि सब बिनहिं बोलाएँ। धरमशील पहिं जाहिं सुभाएँ।।
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं।।

(मानस)

ऐसा स्वाभाविक होने लगता है–

तहवाँ लक्ष्मी झाड़ू देत हैं, शंभु करैं कोतवाली।
तवन घर चेतिहे रे भाई! तोहरा आवागमन मिटि जाई।।

जहाँ भगवान रहते हैं, जहाँ सबका नियन्ता रहता है; वह परात्पर ब्रह्म जहाँ अपनी दृष्टि गड़ा देता है वहाँ उसके समस्त कर्मचारी लक्ष्मी-देवता सब-के-सब डेरा डाल देते हैं कि प्रभु को कष्ट न होने पाये। इसी तरीके से भगवान सन्त की सेवा करवा लेते हैं। दत्तात्रेय को भजन का नशा था। उन्हें कुछ भी प्रभु के सिवा नहीं चाहिए था। वह चाहते थे कि उनके पास कोई न आये, भजन-चिन्तन में व्यवधान उपस्थित न हो; किन्तु पुण्यात्माओं के हृदय में वहाँ का दृश्य प्रसारित होने लगा, जिनका कल्याण होना था उनके अन्तःकरण में बोलने लगा।

'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु...।' *(मानस, 1/48 क)*– भगवान का अवतरण यद्यपि गुप्त होता है फिर भी पुण्यात्माओं के संज्ञान में आ ही जाता है। उसकी सुगंध संसार में फैलते देर नहीं लगती।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 14:2)

मय पीकर जे बउराइ गवा

संसार में जब भी किसी ने परमात्मा को पाया है, भजन के नशे से गुजरकर ही पाया है। सन्त इकबाल इत्यादि इसी स्तर के महापुरुष थे। उन सबके विचारों का भावानुवाद प्रस्तुत पद में प्रस्तुत है–

मय पीकर जे बउराइ गवा ई मत पूछ ऊ का देखेसि।
पक्षिन मां मानुष मां गाछन मां हर मां हरि का जलवा देखेसि।।

मन इल्म मारफत का दारू जब पीकर के मखमूर भवा।
हू हू का नारा लाग भरै हस्ती का प्याला चूर भवा।।
ऊ अमर लोक में लाग घुमै या मृत्युलोक से दूर भवा।
अपने में हरि के लाग लखै कुल मन कै मनसा पूर भवा।।
ऊ जब जब चाहिसि हृदय बीच या दुनिया का नकशा देखेसि।
मय पीकर......।।

मंसूर अनलहक का दारू जब पीकर के मस्ताना भा।
दुसरी दुनिया में लाग घुमै यहि दुनिया से बेगाना भा।।
अपने में हरि का लाग लखै सब समझेनि की बौराना बा।
फाँसी पर चढ़ाइ दिहेन उलमा मुए पर पदी जमाना भा।।
जब लहू अनलहक कहि दिहलेसि तब के न देखेसि दुनिया देखेसि।
मय पीकर......।।

जे जैसन जैसन पियत गवा तैसन तैसन दरजा होइगा।
केउ नबी बनल केउ कुतुब बनल केउ विज्ञानी बाला होइगा।।
केउ मस्त होइ बउराइ गवा सब समझेनि की पगला होइगा।
केउ कुम्मे इज्नी कहि दिहलेसि त मरल मनई जिन्दा होइगा।।
जे भूलभुलैया में भूलल ऊ का देखेसि माया देखेसि।
मय पीकर......।।

जेकरे पर सरिअत खुनसाइल ऊ जिउ दइकै अम्मर होइगा।
आकाश के ऊपर लाग घूमै दूनौ बाजू में पर होइगा।।
सोच न रहल मिट गइल खुदी तब ऊ मनई दूसर होइगा।
ऊ सबके लखै ऊ लखि न परे लामकां पर ओकर घर होइगा।।
तीनहूँ लोक चौदहो भुवन बैकुण्ठ दरइँ बैठा देखेसि।
मय पीकर......।।

इस भजन में प्राप्ति की ओर अग्रसर साधक की रहनी पर प्रकाश डाला गया है। सन्त सृष्टि के किसी कोने में हो जायँ, एक ही निर्णय पर आते हैं। यह मत-मतान्तर, मज़हब-सम्प्रदाय, वाह्य व्यवस्था और कानून का शिकंजा तैयार करते हैं। इनमें आध्यात्मिकता भी आंशिक रूप से रहती है किन्तु अधिकांशतः इनसे उत्पीड़न ही हुआ है। इन संकीर्णताओं से कभी भला नहीं होता। इन मत-मतान्तरों के अनुपालन से भगवान कभी नहीं मिलते और न भजन का नशा ही मिलता है। वह तो केवल रूढ़ि पकड़ा देते हैं।

महापुरुषों ने पाया कि भजन एक नशा है। वह नशा भी ऐसा जो खव्तुल हवास पागल बना देता है। यदि बाहर की दुनिया का भान रह ही गया तो नशा चढ़ा कहाँ? अभी तो अपना भला-बुरा चयन ही कर रहे हैं; किन्तु भजन की खुमारी में,

मय पीकर जे बउराइ गवा ई मत पूछ ऊ का देखेसि।
पक्षिन मां मानुष मां गाछन मां हर मां हरि का जलवा देखेसि।।

भजन एक नशा है। मदिरा के नशे से इसका नशा कम नहीं है। उसे पीकर जो बावला हो गया, उसी के नशे में झूम गया; जैसे मीरा झूमी थी, सुतीक्ष्ण झूमे थे। उन्होंने सुना कि भगवान राम आ गये। वह विचार करते हुए आतुरता के साथ दौड़ पड़े-

हे बिधि दीनबन्धु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया।।

(मानस, 3/9/4)

मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं।।

(मानस, 3/9/6)

हे विधाता! दीनबन्धु प्रभु! क्या मेरे ऐसे अधम पर भी कृपा करेंगे? हमारे हृदय में भरोसा दृढ़ नहीं हो रहा है क्योंकि मुझमें न भक्ति है, न वैराग है न ज्ञान।

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा।।

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की।।

(मानस, 3/9/7-8)

मेरे पास न जप का बल है, न सत्संग, योग या यज्ञ ही है। हाँ, भगवान का एक बाना है कि वह उन्हें प्राणों के समान प्यारा होता है जिसे किसी अन्य का भरोसा न हो। इसलिए,

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन।।

(मानस, 3/9/9)

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा।।

कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुंक नृत्य करइ गुन गाई।।

(मानस, 3/9/11-12)

वह इतना प्रेम-विभोर हो गये कि पूरब किधर, पश्चिम किधर- कोई ज्ञान नहीं रहा। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ?- यह भी भूल गये।

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा।।

(मानस, 3/9/14)

अतिशय प्रीति का प्रवाह देख भवबाधा को शान्त करने के लिए भगवान उनके हृदय में प्रकट हो गये। और जहाँ स्वरूप हृदय में आया,

मुनि मग माझ अचल होइ वैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा।।

(मानस, 3/9/15)

मुनि बीच रास्ते में निश्चल होकर बैठ गये। वह किसी पगडण्डी में नहीं बैठे, फुटपाथ पर नहीं बैठे! सृष्टि से पार जाने का एक ही तो रास्ता है– निवृत्तिपथ, भक्तिपथ! भक्तिपथ में जहाँ स्वरूप हृदय में आया, चञ्चलता समाप्त हो जाती है, मन और मन की सुरत स्थिर हो जाती है। भगवान समीप आ गये। मुनि को जगाने लगे किन्तु वह नहीं जगे। प्रभु ने एक उपाय किया। हृदय से रामरूप तिरोहित हो गया और चतुर्भुज स्वरूप प्रसारित हो गया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें।।

(मानस, 3/9/19)

मुनि घबड़ाकर खड़े हो गये मानो सर्प की मणि खो गयी हो। जहाँ उन्होंने आँखें खोलीं तो भगवान सामने खड़े थे। जब स्वरूप हृदय में आ जाता है तो जहाँ भी दृष्टि डालें, भगवान वहाँ हैं। अस्तु, सुतीक्ष्ण भजन के नशे में इतने विक्षिप्त हो गये थे, अपना और दिशाओं का बोध भी नहीं रह गया था। इन पंक्तियों में इसी नशे का संकेत है–

मय पीकर जे बउराइ गवा ई मत पूछ ऊ का देखेसि।

यह तो पूछो ही मत कि उसने क्या देख लिया; क्योंकि उसने जो देखा है वह वाणी का विषय नहीं है। वाणी से कहकर हम उसे समझा ही नहीं सकते। इसे वही जानता है जिसके हृदय में यह देखते बन रहा है। उसने क्या पाया?– तो,

पक्षिन मां मानुष मां गाछन मां हर मां हरि का जलवा देखेसि।

उसने पक्षियों में, मनुष्यों में, वृक्षों में, जहाँ भी दृष्टि पड़ी अर्थात् जड़-चेतन, जंगम-स्थावर जहाँ भी निगाह गयी **'हर मां हरि का जलवा देखेसि'**– परमात्मा का संचार देखा। उनके स्वरूप का विस्तार, देखा उनकी विभूति और लीला देखी।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।

(मानस, 2/130/7)

यह अवस्था सन्तों में आती है। सूफी सन्तों ने कोई नयी बात नहीं कही थी। तुलसीदास जी कहते हैं कि यह स्तर जब आता है तो न स्वर्ग स्वर्ग के रूप में रहता है और न नरक नरक के ही रूप में रह जाता है जिसकी हम कामना या घृणा करें। उस समय साधक की जहाँ भी दृष्टि पड़ी, उसने अपने आराध्य देव के स्वरूप को खड़ा पाया। यदि ऐसा है तो नशा सही है। भला इस नशे को आपने प्राप्त कैसे किया? इसकी विधि क्या है?– तो,

मन इल्म मारफत का दारू जब पीकर के मखमूर भवा।
हू हू का नारा लाग भरै हस्ती का प्याला चूर भवा।।
ऊ अमर लोक में लाग घुमै या मृत्युलोक से दूर भवा।
अपने में हरि के लाग लखै कुल मन कै मनसा पूर भवा।।
ऊ जब जब चाहिसि हृदय बीच या दुनिया का नकशा देखेसि।
मय पीकर......।।

धर्म का पालन करने के लिए संसार में दो तरीके प्रचलित हैं। एक तो शास्त्रीय पद्धति, व्यवस्थापरक पद्धति 'शरीअत' जिसे प्रवृत्ति मार्ग भी कहा जाता है और दूसरा है गुरु द्वारा निर्दिष्ट ज्ञान जो गुरुओं के 'मारिफ़त' अर्थात् माध्यम से मिलता है जिसे निवृत्ति मार्ग भी कहा गया है। इन दोनों में प्रायः मतभेद हुआ करता है क्योंकि गुरु कहता 'आँखिन की देखी' और शास्त्रों में प्रधानता है 'कागज की लेखी' का, जिसकी व्याख्या पढ़े-लिखे लोग बुद्धि और तर्क से करने लगते हैं जिनका ईश्वरीयपथ में बहुत उपयोग नहीं है।

इसलिए सूफी सन्तों का आग्रह है कि यह इल्म मारिफ़त द्वारा मिलता है और इसे पीने का पात्र मन है।

भौतिक नशा सुराही से, प्याले से, बोतल से और मुँह से पीते हैं लेकिन भजन का नशा वस्तुओं के सहयोग से नहीं, मन से पीया जाता है। **'मन इल्म मारिफ़त का दारू'**– इल्म अर्थ है विद्या, योगयुक्ति! यह एक गोपनीय विद्या है। जो भगवान तक की प्राप्ति करा दे वह भजन-विधि! वह कहीं नहीं मिलेगी, सिवाय सद्गुरु के। वह इल्म जहाँ प्राप्त होता है वह स्थान है गुरु का दरबार।

कभी-कभी बहुत पढ़े-लिखे ख्यातिलब्ध विद्वान् महाराज जी के दर्शन को आ जाते थे। साथवाले उनका परिचय देते कि महाराजजी! आपने दर्शनशास्त्र और अध्यात्म पर शोध किया है। आपने देश-विदेश की डिग्रियाँ ली हैं। वह लोग स्वयं भी निवेदन करते कि सब कुछ तो हमलोगों ने पलट डाला; किन्तु साधन समझ में नहीं आता, भजन-विधि समझ में नहीं आती। महाराज जी उनसे कहते, "हो! सब बात सब कोई जानत है। दो-दो पैसे में वेदान्त बिकत हैं। लोग पढ़त हैं और लिखतौ जात हैं। पता नहीं क्या लिखत हैं लेकिन केवल भजन ही एक ऐसी वस्तु है जो लिखने में नहीं आता, वाणी से कहने में नहीं आता। वह तो किसी महापुरुष के द्वारा किसी-किसी अनुरागी के हृदय में जागृत हो जाया करता है।"

लक्ष्मण ने भगवान राम से पूछा, "प्रभो! सुख का स्रोत क्या है?" भगवान ने कहा–

भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

(मानस, 3/15/3)

लक्ष्मण! अनुपम सुख की मूल तो भक्ति है लेकिन इसकी प्राप्ति तभी होगी जब सन्त अनुकूल हों। सीधे-सीधे तो मैं भी नहीं दे सकता। जब कभी भक्ति मिलेगी तो **'सो बिनु सन्त न काहू पाई।'** *(मानस, 7/119/18)*

सन्त कबीर से किसी ने पूछा– भगवन्! यह भक्ति कहाँ से प्राप्त करें? यह तीर्थों में मिलेगी, पुस्तकों में या कर्मकाण्ड के अनुष्ठान से? कबीर ने कहा– इनमें कुछ भी कर डालो, भक्ति नहीं मिलेगी। जो भगवान से सीधा मेल कराती है उसका नाम है भक्ति! विभक्त माने होता है विभाजन, अलगौझी। यह भक्ति तो **'सन्तो! भगती सदगुरु आनी।'** सद्गुरु प्रदान करते हैं, लाकर दे देते हैं, जागृत कर देते हैं। यह मन सद्गुरु प्रदत्त योगयुक्ति के मारिफ़त शनैः-शनैः नशा प्राप्त करने लगा, नाम की खुमारी चढ़ने लगी और चढ़ते-चढ़ते **'जब पीकर के मखमूर हुआ'**– इतना पीया कि नशे में डूब गया, इतना भजन किया कि मखमूर अर्थात् यज्ञस्वरूप हो गया तब उसने पाया कि मैं तो निमित्त मात्र हूँ, कर्ता-धर्ता तो प्रभु स्वयं हैं; उस दिन से उसने पाया कि उसके इशारे के बिना तो पत्ता भी नहीं हिल सकता। तब,

हू हू का नारा लाग भरै हस्ती का प्याला चूर भवा।

अब तक तो वह साधक 'मैं, मैं' कर रहा था– यह सब मैंने किया, मैंने भजन किया, मैंने ध्यान किया, यह कुटिया-बगिया मेरे भजन के प्रताप से है– **'बिनु तप तेज कि कर विस्तारा।'** किन्तु नशा चढ़ जाने पर वही आज कहने लगा– भगवन्! सब तू ही तू है। वास्तव में साधक तो एक नाथा हुआ बैल है। वह तो निमित्त मात्र है। करता-धरता तो हरि हैं। इसलिए उसके हस्ती का प्याला तो टूट गया, अब भविष्य में भी उसे अहं आयेगा ही नहीं।

ऊ अमर लोक में लाग घुमै या मृत्युलोक से दूर भवा।

मृत कहते हैं नाशवान् को। जगत् नाशवान् है, परिवर्तनशील है, क्षणभंगुर है, प्रतिपल भंग होते चला जा रहा है, यह कल नहीं रह जायेगा। आज फुदकते हुए गुलफाम की तरह बच्चे, आयु के साथ झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और एक दिन राम नाम सत्य हो जाता है। यह संसार मरणधर्मा है। अमृत, जहाँ मृत्यु का समावेश न हो, जिसे मृत्यु न मार सके, वह है आत्मा! आत्मा अविनाशी है, आत्मा शाश्वत है। इसे न तो शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न वायु सुखा सकता है, न आकाश विलय कर सकता है

और यह शरीर के मरने से न तो मरता ही है। आत्मा नित्य, शाश्वत, सनातन, काल से अतीत, परमतत्त्व है और साधक भजन की खुमारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् आत्मा के आलोक में भ्रमण करने लगता है इसलिए जन्म-मृत्यु की परिधि से बहुत दूर निकल जाता है। उस समय,

अपने में हरि के लाग लखै कुल मन कै मनसा पूर भवा।

वह अपने में हरि को देखने लगा, उसकी सारी मनोकामना पूर्ण हो गयी। जहाँ भगवान रहते हैं, जहाँ लक्ष्मी रहती है, ऐश्वर्य रहता है; भगवान अविनाशी हैं, साधक अविनाशी स्थितिवाला हो जाता है। भगवान सर्वत्र हैं तो महापुरुष भी सर्वज्ञता की अवस्था प्राप्त कर लेता है। जड़ जीव संसार में जितने भोग भोग सकता है, भगवान के तादात्म्य से उससे बहुत आगे की समृद्धि वह भक्त पा जाता है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिसकी वह चाह करे। उसकी रहनी ऐसी हो जाती है कि–

ऊ जब जब चाहिसि हृदय बीच या दुनिया का नकशा देखेसि।

उसने इच्छा कर लिया कि हिमालय की चोटी पर क्या है या काशी में क्या हो रहा है? तत्काल वहाँ का वातावरण, वहाँ की परिस्थिति उसके समक्ष आ जायेगी। उसके पास टेलीविजन से भी बड़ा यन्त्र है। वह चाह भर ले!

सती अनुसुइया आश्रम चित्रकूट में गुरुदेव विराजमान थे। क्वार का महीना था। जगह-जगह रामलीला का मंचन चल रहा था। उनमें काशी की रामलीला विख्यात थी। महाराज जी ने बताया– ''हो! हमारे मन में आया कि एक बार काशी की रामलीला और देखते! जब भी चलने का मन करते, भगवान मना कर देते। महाराज ने भगवान का आदेश शिरोधार्य कर लिया किन्तु मन में इच्छा तो थी ही। तीसरे पहर महाराज गाँजे का दम लगाकर चिलम हाथ में लेकर बैठे तो बैठे ही रह गये। घण्टा, डेढ़ घण्टा, दो घण्टे हो गये, चिलम न जाने कब बुझ गयी। जब होश में आये तो कहने लगे– आज तो मैं रामलीला देखने चला गया। यहीं से उड़ते-उड़ते गया और लीला

देखकर चला आया। आज यह लीला हुई, आज ऐसा हुआ। जब तक रामलीला चलती रही, महाराज ऐसा ही कुछ कहते रहे।

एक दिन महाराज चौंक पड़े। वह बोले– यार! आज तो गजब हो गया। लीला में हाथी बिगड़ गया। राजा गिरते-गिरते बचे। मैं भी हाथी के पाँव से दबते-दबते किसी प्रकार दूर सरक गया। व्यासजी रामजी का हाथ पकड़कर गिरते-पड़ते भाग लिये। बड़ी ताली, बड़ी थपोड़ी बजी। सबेरे भी अपना यह वर्णन महाराज जी कर ही रहे थे कि दर्शनार्थियों का एक दल आ पहुँचा। महाराज जी के मुख से यह विवरण सुन उन्हें आश्चर्य हुआ क्योंकि कल की वह लीला देखने के पश्चात् कार से चलकर यह लोग रातोरात चित्रकूट आ गये थे और पैदल चलकर अनुसुइया पहुँच रहे थे। उन्होंने कहा– "अरे महाराज! आप कब आ गये? हमलोग रातभर कार से चलकर अभी पहुँच ही रहे हैं। आप किस साधन से चले आये? जब हाथी बिगड़ा था, हमलोग वहीं थे।" महाराज जी बोले– भैया! हम गये ही नहीं थे। मैं यहाँ बैठे-बैठे ही सब देखा करता हूँ। यही इस पंक्ति में भी है कि '**ऊ जब जब चाहिसि हृदय बीच या दुनिया का नकशा देखेसि।**' वह देख लेगा किन्तु कब? जब '**मय पीकर बौराय गवा**'। ऐसा भजन करें कि होश न रहे, भगवान और साधक की सुरत तद्रूप हो जाय, डोरी लग जाय, नशा हो जाय, खुमारी चढ़ जाय– सुतीक्ष्ण की तरह, जड़ भरत की तरह, मीरा की तरह, शरमद और मंसूर की तरह! अगले पद में पीनेवालों में एक सन्त मंसूर का नाम लिया–

मंसूर अनलहक का दारू जब पीकर के मस्ताना भा।
दुसरी दुनिया में लाग घुमै यहि दुनिया से बेगाना भा॥
अपने में हरि का लाग लखै सब समझेनि की बौराना बा।
फाँसी पर चढ़ाइ दिहेन उलमा मुए पर पदी जमाना भा॥
जब लहू अनलहक कहि दिहलेसि तब के न देखेसि दुनिया देखेसि।
मय पीकर......॥

नाम का नशा पीते-पीते मंसूर को इतनी खुमारी चढ़ी कि अनलहक की अवस्था आ गयी, ब्रह्म और आत्मा तद्रूप हो गये। वह कहने लगे कि मैं खुदा हूँ, 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगे। वह इस दुनिया से अनजान होकर परमात्मा की धारा में चलने लगे– **'न मैंने जाना दुनिया को, न दुनिया ने मुझे जाना।'** उसने पाया क्या? **'अपने में हरि का लाग लखै'**– अपने हृदय-देश में, अपने स्वरूप में वह हरि को देखने लगे। अपने में भगवान का संचार देखने लगे तो सबने उन्हें पागल समझा। मौलवियों ने इसे धर्मविरुद्ध समझ बादशाह से शिकायत की।

फाँसी पर चढ़ाइ दिहेन उलेमा, मूए पर पदी जमाना भा।

धर्माधिकारी उलेमा वर्ग को मंसूर का अनलहक कहना कुफ्र लगा, शरीअत के खिलाफ लगा। उन्होंने फतवा जारी कर दिया कि यह अपने को अल्लाह कहता है, काफिर है। इसे शूली पर चढ़ा दिया जाय। शूली से पहले उनके हाथ-पाँव काटे गये, आँखें निकाल ली गयीं तब भी मंसूर को अपने कथन पर कोई खेद नहीं था। उन्हें संगसार अर्थात् पत्थरों से मारने की सजा भी दी गयी। जनता ने पत्थर फेंकना शुरू किया। मंसूर शान्त रहे। उस भीड़ में वाहिद नाम के एक सन्त थे जो मंसूर की स्थिति से परिचित थे; किन्तु उलेमाओं की कट्टरता देख उन्होंने सोचा कि यदि मैं कुछ नहीं फेंकूँगा तो लोग समझेंगे कि यह भी काफिर है। अपने बचाव के लिए उन्होंने एक फूल (कुछ लोगों के अनुसार मिट्टी का बहुत छोटा-सा टुकड़ा) मंसूर की ओर फेंक दिया। जहाँ फूल का शरीर से स्पर्श हुआ, मंसूर चीख उठे, "वाहिद! ये बेचारे अनजान हैं! तू तो जानता है फिर भी तुमने फूल उठाकर मारा! इनके पत्थरों की चोट तो हमें नहीं लगी लेकिन तुम्हारे फूल से हमें चोट पहुँची।" जनता समझ गयी कि आँखें न होने पर भी यह देख रहे हैं कि कौन पत्थर फेंक रहा है और कौन फूल! अन्त में उन्हें कत्ल कर दिया गया किन्तु कटे हुए अंगों से रक्त की जो बूँदें टपकती थीं, उनसे भी अनलहक की आवाजें आ रही थीं जिसे किसने नहीं देखा! सभी ने देखा। आज इस्लाम जगत् में जिन

सन्तों की पूजा होती है या जिनकी मजारों पर फूल चढ़ते हैं, वे किसी समय में काटे गये, सताये गये। ऐसे सन्तों में सन्त तवरेज, मंसूर, शरमद, राबिया इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रश्न उठता है कि सबको बराबर नशा क्यों नहीं होता? यह निर्भर करता है हमारी साधना पर, लगन पर!

जे जैसन जैसन पियत गवा तैसन तैसन दरजा होइगा।
केउ नबी बनल केउ कुतुब बनल केउ विज्ञानी बाला होइगा।।
केउ मस्त होइ बउराइ गवा सब समझेनी की पगला होइगा।
केउ कुम्मे इज्नी कहि दिहलेसि त मरल मनई जिन्दा होइगा।।
जे भूलभुलैया में भूलल ऊ का देखेसि माया देखेसि।
मय पीकर......।।

जिसने भजन में जितनी लौ लगायी, जितनी मात्रा में संयम साधा, उसका वही स्तर होता गया। **'केउ नबी बनल'**– कोई नबी अर्थात् अवतार की अवस्थावाला हो गया, **'केउ कुतुब बनल'**– कोई कहीं का बड़ा ऋषि, मठाधीश या महन्त बन जाता है। **'केउ विज्ञानी'**– कोई अनुभवी संचारवाला हो गया, वह बैठे-बैठे ही सर्वत्र की जानकारी लेने-देने लग जाता है और कोई **'बाला'** अर्थात् बालकवत् रहनीवाला हो गया। स्वरूप में स्थित महापुरुष परमहंस और पाँच वर्ष का बच्चा एक ही होता है। महापुरुष का शरीर भर बड़ा है किन्तु मनःस्थिति बच्चे की होती है। पाँच वर्ष के बच्चे में काम-क्रोध-लोभ-मोह-रागद्वेषादि विकार नहीं होते। भजन इस ऊँचाई तक पहुँचे कि अन्तःकरण में बालवत् स्वभाव आ जाय। यह संतत्व की चरमोत्कृष्ट अवस्था है। सनकादिक इसी अवस्था के सन्त थे– **'देखत बालक बहुकालीना'** *(मानस, 7/31/4)*। इन्हीं पीनेवाले सन्तों में से **'केउ मस्त होइ बउराइ गवा, सब समझेनि की पगला होइगा'**– कोई आनन्द में इतना डूब गया, मस्त हो गया कि लोगों ने समझ लिया यह अवश्य पागल है, विक्षिप्त है।

इसी कोटि के महापुरुष जड़भरत थे। जीवन के आरम्भिक वर्षों में वह चक्रवर्ती सम्राट रह चुके थे। उस ऐश्वर्य में भी जब उन्हें कोई रस नहीं दिखाई

पड़ा तो सबकुछ त्यागकर सन्त हो गये। भजन पूर्ण हो ही चला था कि एक मृग में आसक्ति हो गयी। जंगल में नदी के किनारे जहाँ वह भजन कर रहे थे, उन्हें एक शेर की दहाड़ सुनायी पड़ी। उन्होंने देखा कि उस दहाड़ से भयभीत एक मृगी ने छलाँग लगायी। उसका प्रसवकाल था, बच्चा वहीं गिर गया। अब महाराज को उस मृगशावक पर दया आ गयी। उन्होंने उस बच्चे का लालन-पालन शुरू किया। वह मृगशावक दस दिन में ही कुलाँचे मारने लगा और एक दिन छलाँग लगाया तो जंगल में ओझल हो गया। भरत बहुत चिन्तित हो गये कि अभी वह निरा शावक है, कोई अनुभव नहीं है। वह इतना भोला है कि शेर का भी मुँह सूँघ लेगा, बहेलिये को भी छू लेगा। अभी तक वह आया नहीं, कहाँ चला गया? कुछ अनहोनी तो नहीं हो गयी!

भरत के जीवन के वे अन्तिम क्षण थे। मृगशावक का चिन्तन करते-करते उनका शरीर छूट गया। **'अंत मति सो गति'** के सिद्धान्त के अनुसार उनका अगला शरीर मृग का मिला। मृग के शरीर में भी उन्हें ज्ञान था कि मैं सन्त रहा हूँ, मोह का परिणाम भुगत रहा हूँ। उन्होंने मृगों का झुण्ड छोड़ दिया और एक सन्त की कुटिया में चले गये। महात्मा लोग किसी जीव को पाते हैं तो उसे बड़े स्नेह से पालते हैं। मृग का भी पालन होने लगा। मृग बने भरत ने सोचा, जीवन तो कट रहा है किन्तु इस पशुयोनि में कब तक रहूँगा? वह इन्द्रायणी नदी में गले तक पानी में जाकर खड़े हो गये। चार दिनों तक वह बिना पानी पिये नदी में खड़े रहे और शरीर त्याग दिया।

मृगशरीर त्यागने पर उनका अगला जन्म एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। वह आठ भाई थे जिनमें तीन तो विद्वत्ता में दिग्विजय कर रहे थे। उनमें मूर्ख थे तो यह भरत! यद्यपि इनका पूर्वज्ञान यथावत् था, विद्या ज्यों-की-त्यों थी; किन्तु यह उसका प्रयोग जानबूझकर नहीं करते थे। पिता ने सोचा– ब्राह्मण का लड़का है, कुछ तो पढ़ ले, कुछ तो याद कर ले। उन्होंने छः महीने तक गायत्री मंत्र पढ़ाया और अन्त में कहा– गायत्री मंत्र सुना दो। भरत ने कहा– 'ओ गाय भैंस..।' पिता ने भी हार मान ली कि यह नहीं पढ़ेगा।

पिता के मरने पर भाइयों ने भरत को कृषि-सुरक्षा हेतु नियुक्त किया। खेतों में लोग पक्षी उड़ा रहे थे किन्तु भरत गा रहे थे– 'राम की चिड़िया राम का खेत। खा लो चिड़िया भर भर पेट।।' कोई प्रतिरोध न देख सारे पक्षी इन्हीं के खेत पर मँड़रा रहे थे। बड़ा भाई आया। उसने भरत को एक झापड़ मारा और बोला– खाता है किलोभर! यह पक्षी कौन उड़ायेगा? तुम्हारी रखवाली से तो फसल का सर्वनाश हो जायेगा। उसने गर्दन पर हाथ लगाकर बोला– जा, कहीं भी चला जा।

भरत इसी दिन की प्रतीक्षा में थे कि यह लोग धक्का देकर हमें घर से निकाल दें। कदाचित् मैं निकलने का प्रयास करूँगा तो यही लोग बाधाएँ खड़ी करेंगे कि भाई! तू ही तो घर का उजाला था, तेरे जाने से अँधेरा हो गया। फिर तो ये पिण्ड नहीं छोड़ेंगे। भय्या-भय्या की कतार लग जायेगी। अच्छा हुआ, इन्होंने स्वयं निकाल दिया।

लोक-व्यवहार से उदासीन भरत 'जड़भरत' के नाम से जाने जाते थे। वह मस्ती में जंगल की ओर निकल गये। वहाँ सात डाकू देवी की पाषाण-प्रतिमा के समक्ष नरबलि का अनुष्ठान कर रहे थे। बलि के लिए पकड़ा गया मनुष्य बन्धन खोलते ही सरपट दौड़कर जंगल में ओझल हो गया। सरदार ने कहा– शीघ्रता करो! किसी दूसरे को पकड़कर लाओ अन्यथा समय पर बलि न मिलने से देवी नाराज हो जायेंगी और हमलोगों को वर्षभर अच्छे डाके नहीं मिलेंगे।

जंगल में दूसरा व्यक्ति इतनी शीघ्रता से कहाँ से मिलता? जड़भरत वहाँ पागलों की तरह टहल रहे थे। उन्हें पकड़कर बलि के लिए लाया गया। जड़भरत से देवी को प्रणाम करने को कहा गया पर वे शान्त रहे। एक डकैत ने बलपूर्वक जड़भरत का गर्दन झुकाया। सरदार ने शराब पीकर खड्ग उठाया। देवी की मूर्ति जहाँ थी, वहाँ से लपटें उठने लगी। लपटों में से एक पुतला निकला, सरदार से तलवार छीन ली, सातों डकैतों को काट डाला। जड़भरत ने जब सन्नाटा देखा तो सिर उठाया, देखा सातों मरे पड़े थे। वह अपनी उसी शान्त मुद्रा में आगे बढ़ गये।

कुछ दिनों पश्चात् महाराजा रहूगण गुरु की खोज में निकले। उनकी पालकी उसी जंगल से होकर जा रही थी जहाँ जड़भरत भजन कर रहे थे। जंगल में पालकी ढोनेवाला एक कहार बीमार पड़ गया। राजा ने कहा– कोई दूसरा कहार ढूँढ़ो। जंगल में दूसरा कहार कहाँ मिलता! उनलोगों ने जड़भरत को पकड़ा और पालकी ढोने के लिए लगा दिया।

जड़भरत ठहरे सन्त! जहाँ चींटियाँ दिखाई दीं वह कभी दायें, कभी बायें पैर रखते, कभी उछल पड़ते। पालकी में झटका लगने से राजा झल्लाया– कैसे चलते हो? हमको झटका लग रहा है। तीन कहारों ने कहा– राजा साहब! हमलोग तो कदम मिलाकर चल रहे हैं किन्तु यह जो नया कहार है इसे हमलोग बहुत समझा रहे हैं कि सीना तानकर चलो, कदम मिलाकर चलो, बोली बोलकर चलो किन्तु यह गँवार सुनता ही नहीं। राजा ने पालकी रोकवा दी, उतर पड़ा और जड़भरत के सामने खड़ा होकर बोला– तुम दुबले-पतले भी नहीं हो! क्या भार अधिक है या तुम्हें रास्ता चला नहीं जाता?

जड़भरत जीवन में पहली बार बोले– राजन्! दुबला या मोटा वह होता है जिसे देहाध्यास होता है। इसी तरह भार ढोने और रास्ता चलने का हाल वह जानता है जिसके कन्धों पर भार है। तू क्या जाने! तू तो ऊपर बैठा है। रहूगण ने सोचा– गुरु की तलाश में निकला था, कहीं गुरु मिल तो नहीं गये। उन्होंने साष्टांग दण्डवत् कर पूछा– प्रभो! जीव का कल्याण कैसे हो? भरत ने कहा– एक परमात्मा के चरण-कमलों में प्रीति! अन्य कोई रास्ता नहीं है। राजा ने कहा– एक परमात्मा में प्रीति कैसे जागृत करें? महात्मा भरत ने कहा– राजन्! किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष के चरणों की धूलि में लोटे बिना वह भजन जागृत ही नहीं होता। राजा ने अनेक देवालय बनवा रखे थे। कहीं युद्ध के देवता, कहीं धन की देवी, कहीं विद्या के देवता– तमाम मन्दिर बनवाये थे। उसने पूछा– भगवन्! ये देवी और देवता?

जड़भरत ने कहा– राजन्! ये देवी-देवता बटेर की तरह बुज़दिल, कौवे की तरह भला-बुरा सब खा लेनेवाले, उल्लू की तरह अचेत आत्माओं

की हत्या करने वाले, बगुले के समान बाहर से साफ-सुथरे लेकिन भीतर से घात लगानेवाले– ये सब जिस परमात्मा के सेवक हैं, उनका भजन करो। भाइयों को वास्तविकता की जानकारी हुई तो सबने जड़भरत से क्षमा माँगी कि सन्त लोग जब इतना छुपकर रहेंगे तो हम अभागे अन्धे कैसे पहचान पायेंगे? यही है कि **'केउ मस्त होइ बउराइ गवा सब समझेनि की पगला होइगा।'** उन सगे विद्वान भाइयों ने नहीं पहचाना, जड़भरत को धक्का देकर निकाल दिया। रहूगण यद्यपि नरेश थे, उन्होंने भी पहले उन्हें पागल ही समझा। भगवान जब परिचय देते हैं तब समझ में आता है और इन्हीं पागलों में से **'केउ कुम्मे इज्नी कहि दिहलेसि त मुअल मनई जिन्दा होइगा।'**– किसी ने कह दिया कि मेरे नाम से उठ तो मरा आदमी भी जिन्दा हो गया।

अरब में एक सन्त हुए हैं शम्स तवरेज! वहाँ के बादशाह का एकमात्र पुत्र मर गया। वह हाय-हाय करने लगा– मेरा तो चिराग गुल हो गया! मेरे बाद कौन है! एक सिपाही बोला, "हुजूर! किले के पीछे एक फकीर रहते हैं। वह चाहें तो यह जीवित हो सकता है।" बादशाह ने कहा, "उन्हें बुलाओ।" सिपाही ने कहा, "उन्हें बुलाना उचित न होगा। उनसे प्रार्थना कीजिए।" बादशाह गया। वह बोले, "भाई! मैं तो केवल मालिक का नाम लेता हूँ, अन्य कुछ भी नहीं जानता हूँ।" बादशाह ने अनुनय-विनय किया कि चलकर उसे देख लें। तवरेज आये। उन्होंने कहा– उठ! अल्लाह के नाम से उठ। लाश में कोई हरकत नहीं हुई। खुदा के नाम से, परवरदिगार के नाम से.....; जितने नाम याद थे सब बोल दिया। कहा– रहम कर, तू तो रहम करनेवाला है किन्तु कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। तवरेज जाने लगे तो बादशाह उनके पैरों में गिर पड़ा, "भगवन्! कुछ तो कृपा करें।" तवरेज ने कहा, "भाई! सब नाम तो हमने पुकार लिये, यह नहीं उठा तो मैं क्या करूँ?" बादशाह पुनः गिड़गिड़ाने लगा तो फकीर ने कहा, "उठ! अपने ही नाम से उठ!" लड़के के शरीर में हरकत होने लगी। बादशाह को मानो अपना प्राण ही मिल गया।

वस्तुतः सन्त या फकीर में अपनी कोई शक्ति नहीं होती। तवरेज अभेद स्थिति अनलहक की अवस्था पार कर चुके थे– **'देखते देखते क्या से क्या हो गया, गर खुदी गुम हुई तो खुदा हो गया।'** भगवान ऐसे सन्त का मान रख देते हैं। किन्तु मौलवी लोगों ने हाय-तौबा मचाया कि इसने मुर्दे को अपने से उठाया, अल्लाह के नाम से नहीं। यह तो काफिर है। इसकी खाल खींच लो। वह महापुरुष पकड़े गये। उन्होंने स्वयं अपनी थोड़ी-सी खाल उतार दी कि इस पर कोड़े लगाओ और आगे बढ़ गये।

धर्माधिकारियों ने आदेश दिया कि इसे कोई खाना न दे, कोई पानी न दे; फिर भी श्रद्धालु लुक-छिपकर कुछ न कुछ खिला-पिला देते थे। एक दिन किसी ने उन्हें थोड़े चने दे दिये। वह भड़भूजे के पास जाकर बोले, "भाई! बुढ़ौती के दाँत हैं, थोड़ा चना भून देते।" उसने कहा, "साईं! हम भून तो देते लेकिन ये सिपाही हमें फाँसी दे देंगे।" तवरेज ने सूरज की ओर देखकर कहा, "यार! तूही कुछ मदद कर! यह चने नरम हो जाते।" कहते हैं सूरज नीचे आने लगा, गर्मी बहुत बढ़ने लगी, हाहाकार मच गया। सब उनके चरणों में गिरे कि दया करें! क्या सबको मार ही डालेंगे! तवरेज शान्त हो गये। इसी घटना से लोग उन्हें शम्स तवरेज कहने लगे। इन्हीं महात्मा की ओर संकेत है कि **'केउ कुम्मे इज्नी कहि दिहलेसि'**– किसी के मुँह से निकल ही गया, **'त मुअल मनई जिन्दा होइगा'**। हमारे गुरु महाराज के जीवन में भी ऐसी बहुत-सी घटनायें हैं जिनका वर्णन **'जीवनादर्श एवं आत्मानुभूति'** साहित्य में है।

जे भूलभुलैया में भूलल ऊ का देखेसि माया देखेसि।

सन्तों ने सांसारिक विकास-प्रकाश को भूलभुलैया कहा है। भूलभुलैया उस इमारत को कहते हैं जिसमें इतने अधिक दरवाजे और रास्ते होते हैं कि व्यक्ति उस इमारत से बाहर निकल नहीं पाते। गृहत्याग कर संतवेष धारण करनेवाले भी इस चकाचौंध में उलझ जाते हैं। आरम्भिक चार दिनों तक तो वे आँखें मूँदते हैं, फिर पर्ची फाड़कर चन्दा वसूलने, मन्दिर बनवाने,

परमात्मा की पाठशाला खोलने या आश्रम-निर्माण कराने में लग जाते हैं। यह सब भूलभुलैया है। भजनानन्दी को इनकी जरूरत ही नहीं होती– **'करतल भिक्षा तरुतल वासं, गोविन्दं भज मूढमते।'** इससे हटकर यदि वह भूलभुलैया में भूल गया तो उसने क्या पाया? घूम-फिरकर उसने माया ही तो देखा; उसकी दशा सोचनीय है।

जेकरे पर सरिअत खुनसाइल ऊ जिउ दइकै अम्मर होइगा।
आकाश के ऊपर लाग घूमै दूनौ बाजू में पर होइगा।।
सोच न रहल मिट गइल खुदी तब ऊ मनई दूसर होइगा।
ऊ सबके लखै ऊ लखि न परे लामकां पर ओकर घर होइगा।।
तीनहूँ लोक चौदहों भुवन बैकुण्ठ दरइँ बैठा देखेसि।
मय पीकर......।।

शरीअत अर्थात् धर्म के नाम पर व्यवस्थाकारों का कानून! कट्टर मज़हबी व्याख्याकार इसमें तनिक भी परिवर्तन स्वीकार नहीं करते। यह आवश्यक नहीं कि किन्हीं परिस्थितियों के लिए बनायी गयी व्यवस्था हर परिस्थिति में उपयोगी हो। तलाक के शाहबानो प्रकरण पर भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने उसे गुजारा पाने का हकदार बताया। भारत के बहुत से संगठनों ने मानवता की दृष्टि से इसे उचित भी बताया किन्तु धार्मिक नेता हाय-हाय करने लगे कि धार्मिक व्यवस्था में किसी अन्य का हस्तक्षेप उन्हें स्वीकार नहीं है। उसे गुजारा नहीं मिल पाया। यह है शरीअत! शरीअत ने सन्त ज्ञानेश्वर के माता-पिता को जलसमाधि लेने पर विवश कर दिया।

सन्त ज्ञानेश्वर के ब्राह्मण पिता मोरोपन्त ने सन्न्यास ले लिया था। एक माह पश्चात् गुरु की आज्ञा से वह पुनः घर आ गये। व्यवस्थाकारों ने अधर्म-अधर्म कहकर उन्हें जाति से च्युत कर दिया, उनके बच्चों को चाण्डाल कहकर उनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होने दिया। जो सन्न्यासी रहकर घर आ गया वह चाण्डाल, उसके लड़के चाण्डाल! मोरोपन्त ने धर्माचार्यों से प्रार्थना की, किसी प्रकार उनके बच्चों को ब्राह्मण बना लिया जाय। धर्माचार्यों ने निर्णय

दिया कि यदि मोरोपन्त देहान्त प्रायश्चित कर लें तो उनके बच्चों को ब्राह्मण बनाया जा सकता है। सपत्नीक मोरोपन्त ने जलसमाधि ले लिया; फिर भी बच्चों को ब्राह्मण नहीं माना गया। यह थी शरीअत!

पण्डितों ने घोषणा कर दिया कि उन बच्चों को कोई भिक्षा न दे किन्तु सन्तों की भिक्षा का प्रबन्ध तो भगवान करते हैं। वही बच्चे निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव और मुक्ताबाई महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त हुए। संत ज्ञानेश्वर ने 'ज्ञानेश्वरी गीता' लिखी। आज महाराष्ट्र में कोई तीर्थस्थल है तो संत ज्ञानेश्वर की समाधि! जबकि शरीअत उनसे नाराज थी। संत एकनाथ को जाति से च्युत कर दिया गया। स्वामी दयानन्द सरस्वती को पाँच बार जहर दिया गया। गोस्वामी तुलसीदास जब तक जीवित रहे, इन व्यवस्थाकारों ने उन्हें चैन से रहने नहीं दिया। उनकी रामायण यमुना में डुबा दी गयी। उनके भक्त टोडरमल के पास एक प्रति थी इसलिए रामचरितमानस उपलब्ध हो सकी है। जिसने डुबाया वह ब्राह्मण ही थे। उनके शत्रु थे तो इन्हीं के भाई ब्राह्मण! उनका मानना था कि ग्रन्थ संस्कृत भाषा में होना चाहिए। यह ग्राम्य भाषा में है गलत है, अधर्म है। आज उसी रामायण की चार चौपाई कोई याद कर लेता है तो व्यास जी कहलाता है, कितने लोगों की जीविका चल रही है परन्तु उसी के रचनाकार से 'शरीअत खुनसाइल' थी।

ईसा को शूली पर चढ़ा दिया गया। शूली पर चढ़ाये जाने के पश्चात् भी उनकी महिमा कम नहीं है। तीन अरब से भी अधिक लोग उनके अनुयायी हैं जो उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं जबकि शरीअत उन पर भी खुनसाइल ही थी।

यूनान में एक अच्छे सन्त हुए हैं– सुकरात। उन्होंने जनता को उपदेश दिया कि देवी-देवताओं को बलि चढ़ाने की अपेक्षा मनुष्य के सत्कर्म अधिक उपयोगी हैं। उन पर समाज को बहकाने और अव्यवस्था फैलाने का आरोप लगाया गया। शरीअत उनसे नाराज हो गयी। उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया। सुकरात ने अपने ऊपर लगाये गये आरोपों का खण्डन किया और बताया

कि उनके मृत्युदण्ड का कारण है अधिकारियों का अविवेक। दूसरा कारण है अपार बढ़ता हुआ उनका समर्थन और अपार बढ़ता हुआ विरोध।

उस जमाने में मृत्युदण्ड के लिए जहर पीसकर पिलाया जाता था। जब जहर पीसा जा रहा था सुकरात ने अपने शिष्यों को बुलाया, उन्हें एक घण्टा उपदेश दिया कि 'इनकी सजा से मैं जा रहा हूँ'– ऐसी बात नहीं है, मेरा समय आ गया है इसलिए जा रहा हूँ। सत्य यही है जो मैं तुम्हें सिखाता रहा हूँ। तुम सब इसका भली प्रकार पालन करना। ये अधिकारी बेचारे अबोध हैं, एक जाल में फँसे हैं इसलिए ऐसा कर रहे हैं। मेरे पास जो ज्ञान है गीता की देन है।

कहा जाता है कि सिकन्दर जब भारत आने लगा तो उसके गुरु अरस्तू ने कहा था कि भारत में ज्ञानी गुरु के दर्शन करके आना, गीता लेकर आना। जरा मैं भी देखूँ कैसी है, क्योंकि गुरुजी (सुकरात) ने देखी थी।

आज भी यूरोप में कोई अच्छे महापुरुष हैं तो सुकरात! इसलिए **'जेकरे पर शरीअत खुनसाइल'**– ये धार्मिक कानून का शिकंजा जहाँ जिस पर कसा, वह **'जिउ दइकै अम्मर होइगा'**– उसने नश्वर शरीर का कलेवर, यह वस्त्र तो बदल दिया लेकिन वस्त्र बदलने के बाद वे अमर हैं। आज भी उन्हीं के पीछे जनसमूह है। उन्हीं के स्वरूप से सबको प्रेरणा मिलती है। ऐसा महापुरुष,

आकाश के ऊपर लाग घूमै दूनौ बाजू में पर होइगा।

एक तो आकाश बाहर है– यह शून्य; दूसरा आपके हृदय में है जिसे चिदाकाश कहते हैं। ऐसा महापुरुष सबके अन्तःकरण में चिदाकाश में उड़ने लगता है, प्रेरक के रूप में प्रसारित होने लगता है मानो उसके दोनों हाथों में पर उग आये हों।

'सोच न रहल'– वह महापुरुष अब निश्चिन्त है। उसे अब कोई फिक्र नहीं। **'मिट गइल खुदी'**– उसका अहम् मिट गया और उसमें भगवान का

स्वरूप प्रसारित हो गया, उसका स्वरूप ही शेष रह गया। **'तब ऊ मनई दूसर होइगा'**– अब वह दूसरा ही आदमी हो गया। क्या विशेषता आ गयी उसमें? **'ऊ सबके लखै'**– वह सबको देख रहा है कि कौन क्या है और **'ऊ लखि न परे'**– वह महापुरुष लोगों की समझ से परे है। लोग तो यही सोचते हैं कि खाते-पीते, उठते-बैठते यह महापुरुष हमारे जैसे ही तो हैं!

पूज्य गुरु महाराज के निवासकाल में अनुसुइया आश्रम के चतुर्दिक घनघोर जंगल था। दस-पन्द्रह किलोमीटर पर गाँव थे। बड़े सवेरे पैदल चलकर आने में दर्शनार्थियों को नौ-दस बज जाते थे। नौ से दो बजे के बीच ही दर्शनार्थी आया करते थे। बीच में कभी-कभी सन्त महात्मा भी आया करते थे। महाराज जी को उनके आने का पूर्वाभास होने लगता था। किसी-किसी के लिये वह कहते– "हूँ! आ रहे हैं! ससुराल से कूँड़ा लेकर आवत हैं। अब इन्हें खाने को दो, बैठने को दो, पीने को गाँजा दो। हर दे हरवाह दे, खोदे का पैना दे!"

हमलोग सोचते कि गुरु महाराज किसके लिए कह रहे हैं क्योंकि वहाँ दूसरा कोई दिखाई नहीं दे रहा था और आप भुनभुनाते जा रहे थे। इतने में दूर कोई आता दिखायी पड़ता। सौ-पचास मीटर दूरी रह जाय, महाराज उस साधुवेशधारी पर बिगड़ पड़ें– "क्यों? अब तक तो हर जोता, धान की रोपाई किया! अब जटा खोलकर, फटी कमरी बगल में दबाकर, चिमटा हाथ में लेकर साधु बनकर चले आये! बिना किराये के घूम रहे हो! यह लोक तो नष्ट है ही, वह भी नष्ट कर रहे हो? अरे! होना ही है तो सच्चा पाठ करैका चाही। जाओ सचो का हो जाओ, नशेवाले हो जाओ।" उनमें से जो समझदार होते वह आकर महाराज जी को दण्डवत् करते। जब वह प्रणाम कर ले तब महाराज जी उसके खाने-पीने, बैठने-लेटने की सारी व्यवस्था करते और साधन भी बताते थे। यदि कोई वेषधारी तुनककर चला जाय तो महाराज जी उसे भी सुनाते थे– "जाओ, जाओ! नाराज होकर क्या पाओगे? क्या हमारे बिटिया का विवाह बिगड़ जाई?"

हमने महाराज जी से अनुरोध किया कि इनको दो रोटी के लिये क्यों झिड़क दिया जाता है? महाराज जी ने कहा, ''तैं न जनिहे! कुपात्र को दान देने से दाता नष्ट हो जाता है। जब वह यहाँ आ ही गया तो कम से कम यहाँ तो उसका ढोंग छूट जाना चाहिए। कुछ तो उपदेश कहूँ तो मिले बिचारे को!''

कभी-कभी महाराज जी कहते, ''आज भोजन कुछ बढ़ाकर बना लेना। कोई अच्छे महात्मा आ रहे हैं। ध्यान देना, कहीं निकल न जायँ। रोज चार-छः आदमियों का भोजन बनता तो उस दिन सात लोगों का बन जाता था। इतने में कोई न कोई सन्त पहुँच जायँ। गुरु महाराज कहते थे, ''देख, वे खड़े हैं। जाकर लिवा आ।'' वह आयें तो सचमुच के महात्मा निकलें। हमलोग उनकी सेवा करते, उन्हें विधिवत् बैठाकर खिलाते, उनसे चार वाणी उपदेश भी सुनने को मिलता।

यही है **'ऊ सबके लखै'** कौन कितने पानी में है? कैसा संस्कार लेकर आ रहा है? और **'ऊ लखि न परै'**– लोगों की निगाह में उनका महापुरुषत्व नहीं आता था। लोग तो इतना ही देखते-जानते थे कि एक महात्मा बैठे हैं।

'लामकां पर ओकर घर होइगा'– लामकान अर्थात् मकानों से परे, बहुत ऊपर; सच पूछो तो परमात्मा ही उसका घर हो गया। गीता में है–

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। *(गीता, 13/22)*

भगवान रहता कहाँ है? गीता अध्याय अठारह में है कि अर्जुन! ईश्वर सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। आरम्भ में भगवान **'उपद्रष्टा'**– उप माने समीप; बहुत समीप द्रष्टा के रूप में है। लाइट जल रही है; उसके आलोक में आप भागवत पढ़ो या कसाईखाना खोल दो, वह आपको मना नहीं करेगी। उसका काम है केवल प्रकाश देना। वह न तो आपके शुभ कर्मों का भागीदार है न अशुभ कर्मों के लिये उत्तरदायी है। जहाँ किसी ने श्रद्धा से एक परमात्मा को शिर झुकाया तो **'अनुमन्ता'**– भगवान

अनुमति देने लग जाते हैं कि यह करो और यह न करो। यदि आपने आज्ञा का पालन नहीं किया तो ठोकर खायेंगे।

इससे अवस्था जहाँ उन्नत हुई तो **'भर्ता'**– वही परमात्मा आपका भरण-पोषण करने लग जाता है, वही करता है जिसमें आपका कल्याण है। **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'**– वह योग के सुरक्षा की व्यवस्था अपने हाथ में ले लेता है। फिर तो साधक चाहे कि हम पतित हो जायँ, नहीं हो सकता, भगवान उसे होने ही नहीं देंगे। जिसमें आपका शाश्वत हित है वही व्यवस्था देंगे और उससे उन्नत होने पर **'भोक्ता'** बन जाते हैं। साधकों द्वारा जो कुछ पार लग गया; यज्ञ, तप, भजन, संयम– उसको वे स्वीकार कर लेते हैं। अंत में **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– उस साधक में अपना स्वरूप प्रसारित कर देते हैं, साधक परम से संयुक्त आत्मावाला हो जाता है। यही है **'लामकां पर ओकर घर होइगा'**– भगवान ही उसका निवास-स्थान हो गया। और फिर उस महापुरुष की रहनी क्या होती है?–

तीनहूँ लोक चौदहों भुवन बैकुण्ठ दरइँ बैठा देखेसि।

तीन लोक और चौदहों भुवन परमधाम परमात्मा को वह अपने हृदय में ही प्राप्त करता है। जब कभी किसी ने पाया है हृदय-देश में ही पाया है, बाहर भटककर नहीं। फिर उसे बैकुण्ठ के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता।

सब घट मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी घट तासु की, जा घट परगट होय।।

सबके हृदय में भगवान प्रसारित हैं, एक भी हृदय उनसे खाली नहीं है किन्तु उस घट के ऊपर मैं अपने को बलि चढ़ाता हूँ **'जा घट परगट होय'**– जिस घट में वे प्रगट हो गये हों, जागृत हो गये हों।

भजन एक नशा है। इसे इस तरीके से पीयो– जड़भरत की तरह, मीरा की तरह, सुतीक्ष्ण की तरह, सन्त मंसूर की तरह एक नशा सवार हो जाय। **'मय पीकर जे बउराइ गवा, ई मत पूछो ऊ का देखेसि।'**– यह पूछो ही

मत कि उसने क्या देखा? क्योंकि जो उसने देखा वह वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह तो तभी समझ में आता है जब हमारे हृदय में भी प्रकट हो।

सन्त कबीर से पूछा गया कि वह नशा कैसा होता है? उन्होंने कहा- '**कह कबीर गूँगे की शक्कर खाय सोई पै जाने।**' गूँगा शक्कर खाता है, शिर हिलाता है, मुस्कुराता है किन्तु उसके स्वाद को व्यक्त नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास वाणी ही नहीं है। शंकराचार्य से पूछा गया तो वह बोले- '**अनिर्वचनीय**'- उसे वाणी से समझाया नहीं जा सकता। हर महापुरुष ने एक ही निर्णय दिया है। जहाँ भी दृष्टि पड़ी वहाँ हरि का जलवा देखा। '**बिन गोपाल ठौर नहिं कतहूँ नरक जात धौं काहे।**' यह अवस्था सबको प्राप्त करनी होती है। इस अवस्था के लिए बहुत जन्मों तक भजन करने की आवश्यकता नहीं है बशर्ते नशा हो जाय। पिछले जन्म का रंचमात्र भी संस्कार नहीं है किन्तु नशा सवार हो जाय; प्रण करके, हठ करके लग भर जायँ तो इस जन्म में भी प्राप्ति हो सकती है। यह नशा, यह प्राप्ति जब कभी किसी को मिली है तो जीते जी मिली है।

मुये मुक्ति गुरु कहे स्वार्थी झूठा दे विश्वासा।

यदि कोई गुरु कहता है कि मरने के बाद मुक्ति मिलेगी, इसी तरह आँख मूँदते रहो- लगता है गुरुजी का कोई स्वार्थ छिपा है। यह स्थिति जब भी मिलेगी, जीते जी मिलेगी क्योंकि-

जीअत मन बस हुआ नहीं तो पुनि देवे बहु त्रासा।
जहँ आशा तहँ बासा मन का यही तमाशा।।

यदि जीते जी मन वश में नहीं हुआ तो मन में संचित संस्कारों के अनुसार जन्म मिलेगा, जैसी आशायें वैसा निवास मिलेगा। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि अन्तकाल में जो जिसका स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करता है प्रायः उसी योनि को प्राप्त होता है और जो मेरा स्मरण करते हुए शरीर का

त्याग करता है वह मेरे सहज स्वरूप को प्राप्त होता है जहाँ से लौटकर आवागमन में नहीं आता। तब तो बड़ा सस्ता सौदा है। जीवनभर काला-सफेद करते रहें, जब मरने लगेंगे भगवान का स्मरण कर लेंगे। इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! ऐसा हो नहीं सकता। **'सदा तद्भाव भाविता'**– प्रायः वही चिन्तन कण्ठ पर बैठ जाता है जिसका जीवन में अधिक प्रयोग किया है। मरते समय स्मृति भ्रमित रहती है, बुद्धि विकल रहती है, उस समय हम-आप कोई नवीन स्मरण कर ही नहीं सकते तो कर कहाँ से लेंगे? इसलिए अर्जुन! तू आज से ही, अब ही से निरन्तर मेरा चिन्तन कर और युद्ध कर। निरन्तर चिन्तन और युद्ध एक साथ कैसे संभव है?

हो सकता है कि 'जय कन्हैयालाल की' कहते रहें और बाण चलाते रहे! इस पर भगवान कहते हैं– अर्जुन! उसका एक नियम है कि योग की विधि को जानकर वैराग्य में स्थिर रहते हुए, एकान्तदेश का सेवन करते हुए, सिवाय मेरे अन्य किसी विषयवस्तु का न स्मरण करते हुए निरन्तर चिन्तन कर और युद्ध कर। एकान्त देश का सेवन! हमें छोड़कर कोई है भी नहीं, आँखें भी बन्द हैं, वहाँ पर भला हम किससे लड़ाई करेंगे? वास्तव में भजन एक युद्ध है। यह क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ की लड़ाई है, प्रकृति और पुरुष के बीच का संघर्ष है। जब हम शान्त-एकान्त में भजन करने बैठते हैं कि सिवाय आराध्य के और कोई स्वरूप नहीं देखूँगा, अन्य कुछ भी नहीं सोचूँगा, उस समय मायिक प्रवृत्तियाँ बाधा के रूप में आती हैं, काम-क्रोध-लोभ-मोह की योजनाएँ प्रसारित होने लगती हैं। शरीर बेशक बैठा है किन्तु मन, जिसे भजन करना चाहिए, हवा से बातें कर रहा होता है। इन मायिक प्रवृत्तियों को काटना युद्ध है, यह अन्तःकरण की लड़ाई है। इस युद्ध के शुरू हो जाने पर ही नशेवाले भजन का स्तर आता है।

एक सेठ जी मरणासन्न थे। उन्होंने कहा– लगता है अन्तिम समय है, मेरी बिटिया को बुलाओ। बेटी आई तो बोले– जरा नाती का हाथ पकड़ा दो। उनके एक सुपुत्र बड़े धार्मिक थे। उन्होंने कहा– पिताजी! आप हमारी

चिन्ता न करें। अब आप भगवान का नाम लें लेकिन उस सेठ को भगवान का कोई नाम याद ही नहीं आता था। इतने में चारपाई पर पड़े-पड़े उसकी निगाह आँगन की ओर पड़ी जहाँ बछड़ा झाड़ू चबा रहा था।

सारी ताकत लगाकर सेठ बोला– ब....झा....। सत्संगी लड़का यह सुनकर बोला– अब पिताजी भगवान का सुमिरन 'वासुदेव, वासुदेव' कर रहे हैं। यह जरूर वहाँ जायेंगे जहाँ दशरथ जी पहुँचे थे। बड़ावाला लड़का थोड़ा मायावी था। उसने कहा– नहीं, उन्होंने कहा ब झा। हमें शंका थी– कहीं दो-तीन लाख छुपाकर रखा है। बाबूजी उसे बताना चाहते हैं। ब से कोई वसीयत भी हो सकती है। वह डॉक्टर के पास दौड़ा– डॉ० साहब! हमारे पिताजी कोई खास बात बताना चाहते हैं। आप ऐसा इंजेक्शन लगा दें जिससे उन्हें थोड़ी ताकत आ जाय। डॉक्टर ने कहा– थोड़ी देर के लिए ताकत आ सकती है किन्तु इंजेक्शन जरा महँगा है। एक हजार रुपये लगेंगे।

उस लड़के को यह धनराशि बड़ी सस्ती प्रतीत हुई। लाखों का मामला जो था। इंजेक्शन की गर्मी चढ़ते ही सेठ बोले, "अरे! बछवा झाड़ू चबा रहा है। हमारे बाद हमारी इज्जत-प्रतिष्ठा का क्या होगा? इसी तरह नुकसान होता रहा तो तुमलोग खाये बिना मर जाओगे।" जहाँ सूई की गर्मी कम हुई वह ठण्डे हो गये।

इस प्रकार जीवनभर काला-सफेद करते रहे तो मरते समय भगवान का स्मरण कैसे कर लोगे? वही स्मरण बरबस कण्ठ पर आकर बैठ जाता है जिसका जीवन में अधिक प्रयोग किया है। इसलिए आज से ही, अभी से एक ईश्वर के प्रति समर्पण के साथ दो-ढाई अक्षर के नाम का सुमिरन आरम्भ करें, कल तो कभी आता ही नहीं। यही सुमिरन करते-करते एक दिन नाम का नशा चढ़ जायेगा।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 16:1)

दुनियाँ जिसे कहते हैं.....

दुनियाँ जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है।
मिल जाय तो मिट्टी है, खो जाय तो सोना है।।

अच्छा सा कोई मौसम, तनहा सा कोई आलम।
हर बात का रोना तो, बेकार का रोना है।।

बरसात का बादल तो, दीवाना है क्या जाने।
किस राह से बचना है, किस छत को भिंगोना है।।

गम हो या खुशी दोनों, कुछ देर के साथी हैं।
फिर रस्ता ही रस्ता है, हँसना है न रोना है।।

दुनियाँ जिसे कहते हैं......।।

संतों की दृष्टि में दुनिया जादू का एक खिलौना जैसा है। जादू में होता तो कुछ नहीं। जादूगर समय-बेसमय अंगूर-आम कुछ भी दिखा देता है। वह किसी व्यक्ति को ऊपर हवा में गायब कर देता है। किसी को काट देगा पुनः जिला देगा जबकि वास्तविकता कुछ भी नहीं, सब दृष्टिभ्रम मात्र होता है। ठीक इसी प्रकार दुनिया एक जादू का खिलौना है और सब देखनेवाले बच्चे की तरह अबोध हैं; तभी तो खिलौनों में उलझे हैं। खिलौनों से बच्चे खेलते हैं। बच्चे खिलौनों के लिए लड़ते-झगड़ते-मचलते हैं, आँसू बहाते हैं। सयानों के लिए उनमें कोई आकर्षण नहीं होता जबकि बच्चों का मन करता है कि उन्हें समेटे रहें, देखते ही रहें।

मान लें, दुनिया का सारा ऐश्वर्य आपको मिल ही गया तब क्या होगा? संतों का अनुभव है– **'मिल जाय तो मिट्टी है'** और संसाररूपी खिलौना **'खो जाय तो सोना है'**। आइए विचार करें कि ऐसा क्यों?

रामचरितमानस में भूप प्रतापभानु की कथा आती है। **'स्वबस बिस्व करि बाहुबल।'**– पूरा विश्व उसके अधीन था। समूची सृष्टि का ऐश्वर्य उसने इकट्ठा कर लिया था लेकिन उसके जीवन में भी एक घटना घट गयी। एक कपटी मुनि से उसकी भेंट हो गयी। उसने कपटी मुनि से ऐश्वर्य की कथा सुनी तो हाथ जोड़कर बोला– प्रभो!

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ।। *(1/164)*

एक तो वृद्धावस्था न आये; दूसरा आशीर्वाद दीजिए कि मृत्यु न हो; तीसरा आशीर्वाद दीजिए कि शरीर में कोई रोग न हो– दाँत न हिले, कमर में दर्द न हो। 'किसी से झगड़ा न हो'– यह न माँगकर कहा– झगड़ा अवश्य हो लेकिन शत्रु दुम दबाकर भागे और मैं उसे देखूँ। सब कामना ही कामना! वह अधूरी कामनाएँ लेकर मर गया।

मानस में ही चक्रवर्ती सम्राट रावण की कथा है–

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी।।
(1/181/12)

जहाँ तक विधाता की सृष्टि थी, रावण ने सबको वश में कर लिया किन्तु वह एक स्त्री की अधूरी इच्छा लेकर मर गया। उसकी लंका सुवर्ण निर्मित थी; किन्तु सब ऐश्वर्य छोड़कर उसे मृत्यु का वरण करना पड़ा। इसीलिए संसार का सब वैभव मिल भी जाय तो मिट्टी है। शरीर जन्मने-मरनेवाला; पायी हुई वस्तु, भोग सामग्री नश्वर! हाँ, यह खो जाय तो आप स्वर्णिम युग में पहुँच जायेंगे; किन्तु यह खोये कैसे? **'जेहिं जाने जग जाइ हेराई।'**– उस परमात्मा की प्राप्ति से ही जगत् खो जाता है और उस परमात्मा

की प्राप्ति सद्गुरु के कृपा-प्रसाद से, एकान्त सेवन से, भजन की विधि जागृत होने से है। यही भाव इन पंक्तियों में भी है–

अच्छा सा कोई मौसम, तनहा सा कोई आलम।

अच्छा मौसम? सृष्टि में कोई ऐसा मौसम नहीं है जो सदा अच्छा लगे। आज कड़ाके की सर्दी है, आप कितना पहन-ओढ़कर बैठे हैं पर बच्चों के लिए मस्ती है, उनके लिए अच्छा है; आपके लिए कष्टसाध्य है किन्तु यही वयोवृद्धों के लिए मौत का संदेश भी है। आज हम-आप गर्मी की कामना करते हैं। ग्रीष्म की प्रखर गर्मी आ गयी तब जी चाहेगा कब वर्षा आ जाय, चार बूँद पड़ जाती तो यह ताप तो कम होता! अतिवृष्टि होने लगी तो लोग कहेंगे– इस कीचड़ से तो शरदकाल अच्छा है! इस प्रकार सृष्टि में ऐसा कोई मौसम नहीं है जो सदा अच्छा रहे।

दुनिया का सारा वैभव सामने रखा है फिर भी निद्रा नहीं आती। एक थे शान्ति प्रसाद जैन। भारत के प्रमुख धनियों में से एक। वह सुप्रीम कोर्ट में बेतिया स्टेट का मुकदमा लड़ रहे थे, प्रतिष्ठित वकील थे। बेतिया स्टेट लावारिस थी। बहुत-से प्रत्याशी निकल आये कि हम वहाँ के राजा के वंशज हैं, स्टेट पर हमारा हक बनता है। बरैनी के एक बाबू साहब भी ऐसे ही एक प्रत्याशी थे। शान्ति प्रसाद जैन ने कहा– "आपका मुकदमा मैं देखूँगा किन्तु शर्त यह रहेगी कि विजयी होने पर खजाने के हीरे-जवाहरात मेरे होंगे और शेष सम्पत्ति आपकी होगी।" वह मुकदमा देखते रहे।

एक दिन जैन साहब ने फोन करके बाबू साहब को बुलाया और बोले– "राजा साहब! आज रात के एक बज गये, मुझे नींद नहीं आयी। हमसे तो वह मजदूर लाख दर्जे अच्छा है जो आठ घण्टे श्रम करता है और खर्राटे की नींद सोता है। उन्होंने खिड़की से झाँककर फुटपाथ पर सोये मजदूरों को दिखाया। धिक्कार है मेरे इस पलंग को जो कि इस पर नींद नहीं आती। राजा साहब! मेरे पास इतना धन है कि दीवालों में सड़ रहा है। मुझे

उनके हिसाब का भी पता नहीं है, फिर भी आपके हीरे-जवाहरात की मुझे कामना है। पता नहीं, मैं अभागा उन्हें देख पाऊँगा या नहीं? भगवान अलग से ब्रह्मा नियुक्त कर दें कि जिस मनुष्य को तुमने बनाया है उसकी इच्छा पूर्ण कर दे तो वह भी नहीं कर सकता। जबकि मुझे कोई कमी नहीं है फिर भी मुझे हीरों की इच्छा है। पता नहीं, मैं इन्हें खाऊँगा या बिछाऊँगा?'' इस वार्ता के ठीक एक महीने पश्चात् वकील साहब का शरीर छूट गया।

जैन साहब को एक लड़का था, वह भी अच्छा वकील था, सुप्रीम कोर्ट में ही प्रैक्टिस करता था। पिता की मृत्यु के पश्चात् मुकदमा वह देखने लगा। छः महीने में उसका भी शरीर छूट गया। बीमारी दोनों को एक! अतः ऐसी कोई समृद्धि नहीं जो आपकी आत्मा को सुखी कर सके। सृष्टि का वैभव **'मिल जाय तो मिट्टी है, खो जाय तो सोना है।'**

'अच्छा मौसम' के सम्बन्ध में लोगों का दृष्टिकोण है कि हीरे-जवाहरात, स्वर्गिक ऐश्वर्य बिछा हो, कारोबार अच्छा हो, पचीसों कारें पीछे लगी रहें किन्तु यह सब मिलकर भी आपको सुख प्रदान नहीं कर सकते। इसलिए अच्छा मौसम सत्गुरु की शरण में होता है, जो तत्त्वदर्शी महापुरुष हैं उनके सान्निध्य में होता है। उनकी शरण में आप जायेंगे, थोड़े ही समय में साधना जहाँ जागृत हो गयी तो आप चिन्तन में डूबते चले जायेंगे। फिर आपको अपने और पराये का भान भी नहीं रहेगा। उस समय आपको चिन्ता रहेगी तो एक–

उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥

(मानस, 1/143/3)

मैं कैसे प्रभु को भा जाऊँ? अच्छे मौसम में जी रहे थे राजकुमार सिद्धार्थ। उन्होंने गृह त्याग दिया, वैभव त्याग दिया। एक खप्पर लेकर एक चीवर पहनकर चल दिये, भगवान बुद्ध कहलाये। चक्रवर्ती नरेश मनु! संसार उन्हीं का बनाया हुआ, संसार के एकछत्र सम्राट! लेकिन एक अदृश्य कमी

उन्हें भी खटक रही थी। वह दुःखी थे, भजन करने निकल पड़े। नैमिषारण्य गये, सन्तों से मिले, साधना का क्रम समझा और भजन में लग गये। भजन में गति आई तो सरसब्ज वाटिकाएँ दिखाने ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्वयं आ गये–

बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा।।
मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए।।

(मानस, 1/144/3-4)

जब विश्वामित्र की परीक्षा लेनी थी, इन्द्र ने मेनका को भेज दिया, सफल रहे। जब नारद को परखना था तो पूरी ताकत के साथ कामदेव को भेजा कि जरा ठोंको-बजाओ कि भक्त कैसा है! नारद उसमें तो नहीं फँसे किन्तु अहंकार में उलझ गये। वाह रे जितेन्द्रिय! नारद दौड़-दौड़कर अपनी जितेन्द्रियता की वाहवाही सुनने में लग गये। किन्तु महाराज मनु! देवलोक उनका बनाया हुआ। भला उन्हें कौन-सा प्रलोभन दिया जाय? संसार भी तो उन्हीं का बसाया हुआ है। तब उनकी परीक्षा में आये– ब्रह्मा-विष्णु-महेश। उन्होंने कहा– ब्रह्मलोक ले लो, विष्णुधाम ले लो, शिवलोक ले लो। **'बहु भाँति लुभाए'**– वह भी एक अच्छा मौसम दिखा रहे थे, मनु ने उनकी तरफ घूमकर देखा भी नहीं।

जब भगवान ने देखा कि मन-क्रम-वचन से यह केवल मुझे चाहता है तो आकाशवाणी हुई कि वर माँगो। मनु ने कहा– प्रभो! केवल आप चाहिए, अन्य कुछ भी नहीं। भगवान बोले– मेरे जैसा तो सृष्टि में कोई है ही नहीं, मैं कहाँ से लाकर दे दूँ? चलो, मैं स्वयं ही तुम्हारे यहाँ अवतरित होऊँगा। भगवान से माँगना है तो भगवान को ही माँग लो। जहाँ भगवान रहेंगे, ये ब्रह्मा-विष्णु-महेश, देवी-देवता सभी तुम्हारे अगल-बगल स्वतः बने रहेंगे। संसार में कोई ऐसा मौसम नहीं जो सदा एकरस रह सके। अच्छा मौसम है भगवत्-पथ, सद्गुरु की शरण! जहाँ साधना जागृत हुई, कुछ ही समय में

साधक एकान्त में देखा जाता है। इसी से कहते हैं– **'अच्छा सा कोई मौसम, तनहा सा कोई आलम'**। तनहा माने अकेला, वहाँ केवल अपना तनमात्र है और कोई नहीं। वह तुरन्त एकान्त सेवन करने लगता है। उसका मन करेगा किसी से भेंट न हो, किसी से बात करने का भी मन नहीं करेगा। साधक की ऐसी दशा हो जाती है। आलम माने संसार भी होता है। जब साधक शान्त-एकान्त में बैठा है, उस समय सारी दैवी वृत्ति साधक के साथ रहती है, धड़ाधड़ आवाजें आने लगती हैं, भगवान उसका योगक्षेम करने लगते हैं। उस साधक के पास आध्यात्मिक संसार होता है, सद्गुणों की भीड़ होती है। लेकिन यह तब सम्भव है जब हम तनहा हों और मौसम में सद्गुरु के सान्निध्य से गुजरें। साधक में सतत् चिन्तन की अवस्था जागृत हो जाय तभी वह एकान्त में रह भी पायेगा, तनहा हो सकेगा।

हर बात का रोना तो, बेकार का रोना है।

यदि इतना हो गया तो आपको किसी वस्तु की कमी नहीं रहेगी। यदि इतना नहीं हो सका तो एक कमी की पूर्ति के पश्चात् दूसरी के लिए रोना लगा रहेगा। एक बस डाल दिया तो दूसरी के लिए पुनः प्रार्थना-पत्र देना– आयुपर्यन्त एक न एक कमी खटकती रहेगी।

एक बार गुरु महाराज ने कहा कि भगवान ने मुझसे ऐसा कहा, उस स्थान पर यह कहा, वहाँ हमें पतित होने से बचाया। हमने पूछा– "महाराज जी! क्या भगवान बातें करते हैं?" गुरु महाराज बोले– "हाँ हो! भगवान ऐसे बतियावत हैं जैसे हम-तुम बैठ के बतियायीं, घण्टों बतियायीं और क्रम न टूटै।" किन्तु यह तब सम्भव है जब शान्त-एकान्त में सुरत लगाकर रहो, रहने लगो। तनहा होने पर वह आलम मिलेगा, ईश्वरीय आलोक की सभी विभूतियाँ आपके अगल-बगल रहेंगी। फिर कोई कमी नहीं रहेगी – रोना नहीं पड़ेगा। यदि आप इसके विपरीत हैं तो रोना पड़ेगा और वह बेकार का रोना होगा। अब बताते हैं कि एकान्तसेवी साधक के लक्षण क्या हैं?–

बरसात का बादल तो, दीवाना है क्या जाने।
किस राह से बचना है, किस छत को भिंगोना है।।

भक्त को बरसात के बादल की उपमा दी गयी है। जब वह ईश्वरीय विभूतियों और आलोक से सम्पर्क स्थापित कर लेता है, उस आलम, उस भीड़भाड़ से गुजरनेवाला होता है तो उसकी रहनी बरसात के बादल की तरह होती है। बादल दस किलोमीटर दूर दिखेगा किन्तु पानी यहाँ गिरेगा। वह किसी राह से बँधा नहीं है। वह तो स्वतन्त्र शून्य में चल रहा है। ऐसे साधक को किससे बचना है, किस रहनी से रहना है, किस पर अनुकम्पा की वर्षा करनी है, उसकी जिम्मेदारी समाप्त! यह दायित्व भगवान स्वयं सम्पादित कर देते हैं। वह प्रेरणा कर उधर ही ले चलेंगे जिसमें साधक का हित है।

राम झरोखे बैठकर, सबका मुजरा लेय।
जैसी जिसकी चाकरी, तैसी ताको देय।।

वह तो प्रभु के झरोखे में बैठ गया। वह सबकी प्रार्थनाएँ सुनता है और **'जैसी जिसकी चाकरी'**– किसकी सेवा हृदय से है किसकी बनावटी; किसमें संस्कारों का कैसा दबाव है, उसी के अनुरूप व्यवस्था भगवान स्वयं करते रहते हैं। **'करत करावत आप हैं, पलटू पलटू शोर।'**– संत पलटू साहब कहते हैं कि करते तो भगवान हैं, हमारा केवल नामभर रहता है। किसी आदमी का भला हो गया तो कहते हैं– 'आपकी कृपा से हो गया।' जबकि करते भगवान हैं। यह बादल की जिम्मेदारी नहीं है कि किस छत को भिंगोना है, किस पर वरदहस्त रखना है लेकिन लोगों को वरदहस्त मिलने लगता है। अन्त में बताते हैं कि इस पथ के आरम्भ में बाधाएँ बहुत-सी हैं–

गम हो या खुशी दोनों, कुछ देर के साथी हैं।
फिर रस्ता ही रस्ता है, न हँसना है न रोना है।।

ईश्वर-पथ में मीरा को शूलों की सेज बिछायी गयी, कितने विघ्न आये। प्रह्लाद को समुद्र में फेंका गया, आग में जलाया गया– त्रय तापों की

ज्वाला में माया जलाया ही करती है, संसार के विषयरूपी वारि में ढकेला ही करती है। यह विघ्न प्रह्लाद ही नहीं, सभी साधकों के सामने आते हैं। उस समय कभी सहयोग मिलेगा तो खुशी और सहयोग नहीं मिला तो गम महसूस होता है। लेकिन इस शायर का कहना है कि यदि हम इस पथ पर समर्पित हैं तो **'गम हो या खुशी, दोनों कुछ देर के साथी हैं।'**– कुछ दूरी तक यह दोनों पीछा करते हैं। हनुमान समुद्र सन्तरण करने चले तो मैनाक ने कहा– आइए, इस स्वर्णिम शिखर पर विश्राम कीजिए। पहले स्वर्ण का प्रलोभन! आगे बढ़े तो एक भयंकर राक्षसी सुरसा बदन बढ़ाने लगी। **'सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।'**– जितना बड़ा समुद्र, उतना बड़ा मुँह। हनुमान अत्यन्त छोटे बनकर उसके मुँह से निकल आये। सुरसा ने कहा– ''तुम बल-बुद्धि में निष्णात हो। राम का कार्य तुम अवश्य करोगे– यह मेरा आशीर्वाद है।'' आशीर्वाद देकर सुरसा चली गयी। इस प्रकार **'गम हो या खुशी, दोनों कुछ देर के साथी हैं।'** इस ईश्वर-पथ में ये कुछ ही दूरी तक पीछा करते हैं। **'फिर रस्ता ही रस्ता है'**– रास्ता एकदम साफ, चले जाओ धड़ाधड़। **'हँसना है न रोना है'**– न हँसी का अवसर, न रोने का!

दुनियाँ जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है।
मिल जाय तो मिट्टी है, खो जाय तो सोना है।।

जिसे हम दुनिया कहते हैं, सरसब्ज वाटिका जैसी है। यह फुदकते हुए बाल-गोपाल, लहलहाती हुई खेतियाँ जादू के खिलौने जैसी हैं। इनके प्रति हम सबके मन में एक भयंकर आकर्षण है। इन्हें बिना देखे हम सबसे रहा ही नहीं जाता। इस जंगल या ग्राम्य-परिवेश से हटकर अमेरिका के विकसित नगरों में ही क्यों न चले जायँ, चित्त इसी खपरैल वाली झोपड़ी में लगा रहेगा कि इसमें क्या हो रहा होगा? इसके प्रति मन में जबरदस्त खिंचाव है। जिसके लिए हम मर मिट रहे हैं, खींचे चले आ रहे हैं, वह मिल भी जाय तो मिट्टी है क्योंकि **'सोइ पुर पाटन सोइ गली, बहुरि न देखा आइ।।'** चंद दिनों पश्चात्, आयु के दिन जहाँ पूरे हुए शरीर का परिवर्तन निश्चित है। फिर जिस

नई जगह जन्म होगा, वहाँ की दूसरी ही दुनिया, दूसरे ही लोग, दूसरा ही घर-परिवार, दूसरा ही परिवेश, दूसरी ही इज्जत, दूसरी ही मर्यादा– आज तक जितना अर्जित किया पुनः इनका दर्शन भी नहीं होना है। यह हमारे किस काम आयेगी? यह मिट्टी नहीं तो क्या है? क्योंकि इसे छोड़कर आगे सफर करना पड़ेगा। आप लौटकर पुनः इस घर को नहीं देख पायेंगे इसलिए यह **'खो जाय तो सोना है।'** लेकिन **'तुलसीदास कह चिदविलास जग, बूझत बूझत बूझै।'** गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि जगत् का निवास तो चित्त के अन्तराल में है; यह खोये कैसे? बाहर से अभाव हो गया तब भी क्या खो गया? मन तो रात-दिन हाय-हाय कल्पना कर रहा है। यह कैसे खोये? इसके लिए सरल-सा उपाय बताया–

अच्छा सा कोई मौसम, तनहा सा कोई आलम।

सृष्टि में ऐसा कोई मौसम नहीं जो एक ही शरीर को सदैव एक जैसा लगे। जब सब नश्वर ही है, जादू ही है तो अच्छा मौसम केवल एक है– भगवान का भजन; और भजन के शोध का स्थान है तत्त्वदर्शी महापुरुष, सत्गुरु का दरबार! उनके द्वारा निर्दिष्ट टूटी-फूटी सेवा, टूटी-फूटी साधना जहाँ पार लगी तहाँ तुरन्त शान्त-एकान्त में पहुँच जाओगे। एकान्त में भी जब मन लग जाय तो तनहा हो गया– **'तनहा सा कोई आलम।'** उस वक्त है तो अकेला और आलम कहते हैं संसार की भीड़भाड़ को। अकेला आलम कैसा? तो भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– ऐकान्तिक सुख मैं हूँ। शान्त-एकान्त में जिसकी लौ मुझमें लग जाय, उसके हृदय में मैं प्रवाहित होता हूँ।

जहाँ शान्त-एकान्त में सुतीक्ष्ण की तरह लौ लगी तो सारे देवता (दैवी सम्पद्), दैवीय आलोक के प्राणी उसके सामने ऊँची-नीची अवस्थाओं के भेद बताते रहेंगे। इनका एक आलम साधक के चतुर्दिक रहता है। भगवान आगे-पीछे रहकर **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'**– योगक्षेम की व्यवस्था में रहेंगे। यह आलम तनहा होने पर ही सम्भव है।

जब भगवान का ही वरदहस्त और उनकी विभूतियों का दिग्दर्शन आने लगा तो सारा दुःख समाप्त। फिर उसे छोटी-छोटी बातों के लिए रोना नहीं पड़ेगा? आगे इस जीव का जिसमें कल्याण है वह व्यवस्था स्वयं प्रभु ही देते रहते हैं, सार-सँभाल करते रहते हैं। इसके विपरीत यदि आप संसार से आशावान् रहेंगे तो एक पूर्ति के अनन्तर पुनः अभाव; दूसरी पूर्ति हुई तो तीसरा दुःख; क्योंकि यह संसार 'दुःखालयम् अशाश्वतम्' है ही। ऐसे महापुरुष की रहनी कैसी होती है? उसकी चाल कैसी होती है?– तो बताया– जैसे बरसात का बादल! उसकी जिम्मेवारी स्वयं प्रभु ले लेते हैं।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 16:2)

तू दैरे हरम का मालिक है

एक भक्त प्रार्थना करता है– प्रभो! आप तो उस परमधाम के मालिक हैं, सर्वसमर्थ हैं। आपके लिए असम्भव कुछ भी नहीं है। तो प्रभो! मेरी थोड़ी-सी अर्जी है, आप उसे स्वीकार कर लें। इसी आशय का यह भजन है–

तू दैरे हरम का मालिक है, बस इतना करम मुझ पर कर दे।
काबा की तरफ ये रुख न सही, तो रुख की तरफ काबा कर दे॥
तू दैरे हरम.......॥1॥

मझधार में कश्ती छोड़ दिया, अब तेरे हवाले करता हूँ।
कश्ती को डुबो दे दरिया में, या कश्ती लबे दरिया कर दे॥
तू दैरे हरम.......॥2॥

बख्शिश की तेरे कोई शिकवा नहीं, पर इतनी गुज़ारिश है बेशक।
तू छीन ले दिल से दरद मेरा, या दरद भरी दुनिया कर दे॥
तू दैरे हरम.......॥3॥

क्या हाल बयाँ मैं तुझसे करूँ, या हाल बयाँ है मुझसे तेरा।
तू चाहे अगर तो अनहद की, आवाज़ भरी दुनिया कर दे॥
तू दैरे हरम.......॥4॥

प्रभो! आप उस परमधाम के मालिक हैं, सर्वशक्तिमान् हैं। आपके लिए असम्भव कुछ भी नहीं है। आप थोड़ा-सा करम मेरे लिए भी कर दें, थोड़ी-सी कृपा कर दें। यदि हमारा रुख, हमारा चेहरा आपके घर काबा की ओर नहीं है तो न सही, **'तू रुख की तरफ काबा कर दे'**– जहाँ भी मेरी

दृष्टि पड़े, वहाँ-वहाँ तो काबे को खड़ा कर सकता है; मैं किधर भी जाऊँ आप ही मिलें।

योगपथ में भक्तों के समक्ष यह अवस्था आती है। पूर्व में होनेवाले मनीषी इसी अवस्था से गुजरे हैं कि–

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।।

(मानस, 2/130/7)

न तो स्वर्ग स्वर्ग के रूप में रह जाता है जिसकी हम कामना करें और न नरक नरक के रूप में रह जाता है जिससे हम भयभीत हों। जहाँ भी दृष्टि पड़ी, साधक ने अपने आराध्य देव को खड़ा पाया। वैदिक ऋषियों की अनुभूति है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।।

जगत् में जो कुछ भी है, सबमें ईश्वर का वास है, लेशमात्र भी जगत् का आभास नहीं रह जाता। उस अवस्था का भक्त प्रार्थना करता है– प्रभो! यदि आपके धाम की ओर, आपके स्वरूप की ओर मेरी दृष्टि स्थिर नहीं हो पाती, यदि हमारा रुख उधर नहीं है तो न सही; आप तो समर्थ हैं न! जरा-सी कृपा हमारे लिए कर दें। क्या? जहाँ भी हमारी दृष्टि पड़े, वहाँ आप काबा खड़ा कर दें, अपने धाम को खड़ा कर दें, अपने रूप को खड़ा कर दें। अग्रेतर पंक्ति में कहते हैं–

मँझधार में कश्ती छोड़ दिया, अब तेरे हवाले करता हूँ।

बीच धारा में हमने नाव को छोड़ दिया है। अब आपको इसे समर्पित करता हूँ, अब इसे आप देखें! हमने जीवन-नैया को बीच दरिया में छोड़ दिया। हमने खेना भी बन्द कर दिया है। इसे आपको समर्पित कर दिया है। आप चाहे इसे दरिया में डूबने दें या इसे नदी के किनारे पार करा दें। सन्त कबीर तो कहते हैं कि नाव में नदी भी डूब सकती है; क्योंकि भजन-पथ में नियम ही नौका है। नियम का पालन होने लगे तो भवनदी ही उसमें समाप्त हो जाती है। यही आशय गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में देखें–

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।

(मानस, 7/43/7)

मनुष्य-शरीर भवसागर से पार होने के लिए जहाज है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। तथा–

करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

(मानस, 7/43/8)

सद्गुरु इस मजबूत नाव को खेनेवाले हैं, केवट हैं, संचालक हैं। अब तो मैं स्वयं छटपटा रहा था, प्रयत्न कर रहा था; अब मेरी समझ में आ गया है कि मेरे किये कुछ होनेवाला नहीं है। इसलिए इस जीवन-नौका को **'अब तेरे हवाले करता हूँ'**– आपको सौंपता हूँ।

कश्ती को डुबो दे दरिया में, या कश्ती लबे दरिया कर दे।

आप चाहे इसे डुबा दें या मेरी कश्ती को दरिया के किनारे लगा दें। भक्त पुनः निवेदन करता है–

बख्शिश की तेरे कोई शिकवा नहीं, पर इतनी गुजारिश है बेशक।

आपने जो बख्शिश, जो खैरात, जो पुरस्कार दिया है, अकारण अहैतुकी कृपा की है; जैसे– करुणा कर दुर्लभ मनुष्य शरीर दिया, सूझ-बूझ दी कि भजन की इच्छा जागृत हुई, आपने भजन की लाईन दी, इतना कुछ दिया है कि हमें आपसे कोई शिकवा-शिकायत नहीं है; किन्तु जरा-सी प्रार्थना है–

तू छीन ले दिल से दरद मेरा, या दर्द भरी दुनिया कर दे।

गुजारिश यह है कि आप मेरे दिल का दर्द छीन लें। विरह की जब आग लग जाती है, कसक पड़ जाती है तो वह अन्य किसी तरीके से दूर हो ही नहीं सकती। वह तो तभी दूर होती है जब भगवान स्वयं हृदय में उतर आयें।

कै बिरहनि कूँ मींच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणा, मोपै सह्या न जाइ।।

मीरा के हृदय में यह दर्द हुआ। उन्होंने कहा–

दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या ना कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटे, जब बैद सँवरिया होय।।

पीर मिट सकती है यदि वैद्य साँवलिया हो। वह हृदय में दिखाई पड़े, स्थायित्व ले ले। भरत का दुःख तभी दूर हुआ जब राम आ गये।

'या दरद भरी दुनिया कर दे'– लेकिन यह दर्द बड़ा प्यारा है। इस दर्द में आनन्द है। इस विरह में एक मस्ती है इसलिए थोड़ी-सी कृपा यह करें कि सारी दुनिया को ही यह दर्द हो जाय। सब तेरे विरह में पागल हों, सब छटपटाते रहें–

एक तीरे इश्क है जो दिलों के पार है।
हम तड़पते हैं यहाँ, वहाँ तड़पता यार है।।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! जो मुझे जितना भजता है, मैं भी उसे उतना ही भजता हूँ। वह दो कदम मेरी ओर रखता है तो मैं भी दो कदम उसकी ओर रखता हूँ, बल्कि उससे भी आगे बढ़कर अनुग्रह करता हूँ–

जहाँ भगत मेरो पग धरे, तहाँ धरूँ मैं हाथ।
पाछा लागा नित रहूँ, कबहूँ न छाड़ूँ साथ।।

हाँ, तो भक्त कहता है– पहले तो मेरा दर्द छीन, मुझे मिल और यह दर्द भी क्या है, एक मस्ती है। यह दरद ही तो मानव-तन मिलने का सर्वोपरि उपहार है इसलिए **'तू दरद भरी दुनिया कर दे'** अर्थात् तू सबको आस्तिक बना दे, सबमें अपना संचार जागृत कर दे–

गृही बिरति रत हरष जस विष्णु भगत कहुँ देखि।।

(मानस, 4/13)

राम के राज्य में ऐसा हुआ था–

राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।

(मानस, 7/20/4)

उनके राज्य में सभी परमगति के अधिकारी थे। वहाँ के लोग भगवान के लिए पलकें बिछाये हुए थे–

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं।।

भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि।।

(मानस, 7/29/1-2)

इस प्रकार वे परस्पर उपदेश किया करते थे। अन्त में भक्त कहता है– प्रभो! यह तो हमारे आपके बीच आपस का लेना-देना है–

क्या हाल बयाँ मैं तुझसे करूँ, या हाल बयाँ है मुझसे तेरा।

मैं बार-बार अनुनय-विनय करके अपनी स्थिति आपके सामने निवेदन करता ही रहता हूँ; जैसे–

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।। *(विनय-पत्रिका)*

यह है भक्त का आत्म-निवेदन जिसे यहाँ कहते हैं कि हाल बयाँ करना, भगवान के सामने सत्‌गुरु के सामने अपना स्पष्टीकरण करना। गुरु महाराज कहते थे– ''हो! 'हृदय में कुछ और है, वाणी में कुछ और है'– ऐसा साधक कभी कामयाब नहीं होता। गुरु के सामने जो हृदय में है वह जबान पर होना चाहिए।''

'क्या हाल बयाँ मैं तुझसे करूँ'– अपनी व्यथा तो मैं सदा आपके सामने कहता ही रहता हूँ लेकिन हमें तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि **'हाल बयाँ है मुझसे तेरा'**। मुझसे ही आपका हाल बयान होता जाता रहा है। आज तक सृष्टि में भगवान की महिमा का प्रसारण जब कभी हुआ है भगवान के किसी अन्तरंग भक्त द्वारा ही हुआ है।

चंदन तरु हरि सन्त समीरा। *(मानस, 7/119/17)*

भगवान चन्दन के स्थिर वृक्ष जैसे हैं। संत समीर हैं जो चंदन की खुशबू को दूर-दूर तक प्रसारित करते रहते हैं; देश-विदेश में फैला देते हैं। जैसा कि भगवान बुद्ध का उपदेश सन्तों द्वारा ही देश-विदेश में फैल गया। किन्तु हाल बयाँ करनेवाले सन्तों के लक्षण क्या हैं? यह उन सन्तों की रहनी में परिलक्षित होता है जिनमें अनहद की वाणी जागृत हो जाय।

तू चाहे अगर तो अनहद की, आवाज़ भरी दुनिया कर दे।

प्रभो! यदि आप ही स्वयं चाह लें तो अनहद की आवाज से दुनिया को भर दें। हद कहते हैं सीमा को, अनहद कहते हैं असीम को। ससीम है सृष्टि और असीम है परमात्मा! तू चाहे तो अपनी वाणी का सूत्रपात् बच्चे-बच्चे में कर सकता है।

इस प्रकार इन पंक्तियों में भक्त निवेदन करता है कि प्रभो! यदि हमारा रुख आपकी तरफ स्थिर नहीं हो पाता तो आप ही थोड़ा अनुग्रह करें, मेरे लिए थोड़ा-सा करम करें कि जिधर भी मेरी प्रवृत्ति हो, उस तरफ तू काबा कर दे। कथा आती है कि एक बार गुरुनानक मक्का पहुँच गये। वहाँ वह मस्जिद की ओर पाँव करके लेट गये। मौलवी लोग दौड़ पड़े– अरे! तौबा-तौबा! काफिर कहीं का! तूने खुदा के घर की तरफ पैर कर दिया? गुरुनानक बोले– भाई! जिधर खुदा का घर न हो तुम उधर ही मेरा पैर कर दो। मौलवी ने आवेश में आकर उनका पैर दूसरी ओर घूमा दिया तो मस्जिद ही घूम गयी। पुनः पैर घुमाकर यथावत् किया तो मस्जिद सही सलामत हो गयी। काबा कहाँ नहीं है? परमात्मा तो जर्रे-जर्रे में है, कण-कण में व्याप्त है–

बिनु गोपाल ठौर नहिं कतहूँ नरक जात धौं काहे।

लेकिन यह सन्तों की अवस्था-विशेष है कि जिधर ही रुख किया, उधर ही काबा! यह योग्यता नानक में थी और साधना करके जो इस शिखर पर पहुँच जाता है, उसमें भी यही योग्यता सम्भव है।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 17:1)

चदरिया झीनी झीनी बीनी

चदरिया झीनी झीनी बीनी
राम नाम रस भीनी......चदरिया..........॥

काहे कै ताना काहे कै भरनी
कौन तार से बीनी........चदरिया..........॥

इंगला पिंगला ताना भरनी
सुषमन तार से बीनी.....चदरिया..........॥

आठ कँवल दल चरखा डोले,
पाँच तत्त गुन तीनी.......चदरिया..........॥

साईं को सिअत मास दस लागे,
ठोंक ठोंक के बीनी.......चदरिया..........॥

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े,
ओढ़ि के मैली कीनी.....चदरिया..........॥

दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों की त्यों धर दीनी....चदरिया..........॥

आपके शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर है। वह है चित्त का विस्तार! मन का विस्तार! उसी के सम्बन्ध में यह भजन है। प्रायः कुछ लोग कहते हैं कि यह शरीर ही चादर है जिसे भगवान ने दस महीनों में बनाया है किन्तु शरीर चदरिया नहीं है, शरीर तो रहने का एक मकान है। यह चादर तो **'सदा**

राम रस भीनी' है और राम के रस में तो चित्त ही भींग सकता है, शरीर नहीं। कोई काम-काम जपता है, कोई क्रोध-क्रोध जपता है। रामरस में कहाँ भींगा रहता है किसी का चित्त? सन्त कबीर कहते हैं कि मेरा चित्त तो सदा रामरस में सराबोर है। गुरुनानक कहते हैं–

राम नाम उर में गयो, जाके सम नहिं कोय।
जा सिमरत संकट मिटे, दरस तिहारो होय।।

राम नाम हृदय में जाते ही, उसके साथ ही प्रभो! आपका दर्शन हो जाता है और सदा-सदा के लिए संकट कट जाता है। यही कबीर कहते हैं कि चदरिया सदा '**राम रस भीनी**'। इसकी बिनाई बहुत सूक्ष्म है– '**चदरिया झीनी झीनी बीनी।**' कितना सूक्ष्म है? संत कबीर कहते हैं–

पानीहू ते पातरा, आसमान ते झीन।
पवनहू ते उतावला, दोस्त कबीरा कीन।।

कबीर ने बताया कि भगवान कैसे हैं? वह कहते हैं– पानी से पतला, आकाश से भी सूक्ष्म झीना! वेग से चलने का उपमान वायु है। लोग कहते हैं, उसने वायु वेग से रथ हाँका। वह भगवान वायु से भी अनन्त गुना वेगवान है। '**दोस्त कबीरा कीन**' अर्थात् कबीर ने उनसे मित्रता कर ली। भगवान जब कृपा करते हैं तो स्वामी भाव, सख्य भाव और कभी वात्सल्य भाव में भी भक्तों का निर्वाह करते हैं। यह चदरिया बहुत झीनी है। संसार मोटी परत है जिसमें चित्त रमा है। परमात्मा इससे बहुत सूक्ष्म है। '**तुलसीदास कह चिद् विलास जग, बूझत बूझत बूझै।**'– तुलसीदास ने कहा कि चित्त का पसार ही जगत् है लेकिन यह बात समझ में आते-आते ही समझ में आती है। यह कहने से समझ में नहीं आती। चित्त को इतना बड़ा जितना संसार; लेकिन भजन के प्रभाव से सिमटकर प्रभु के रंग में रँग गया। परमात्मा तो अति सूक्ष्म है, कण-कण में व्याप्त है। पृथ्वी पर जैसे गंगा की धारा बहती है इसी प्रकार सूर्य-चन्द्रमा, पृथ्वी-पाताल, लोहे और ठोस चट्टानों में भी वह

परमात्मा अविरल प्रवाहित है; उन सबकी जीवनी-शक्ति के रूप में है इसलिए परमात्मा झीना है। हमने अपने चित्त को उस झीने में अतिसूक्ष्म परमात्मा में बीन दिया है, उसमें सराबोर कर दिया है। यह बिनाई आपने किस प्रकार की?–

काहे के ताना काहे के भरनी, कौन तार से बीनी।

बुनाई करते समय ताना सीधे खड़े धागे को कहते हैं। आड़ा पड़ा धागा बाना है जिसे भरनी भी कहते हैं जिसे काठ की ढरकी से दायें-बायें धागा फैलाकर पंजे से ठोंकते हैं। इस चदरिया को बुनने में धागा कौन-सा लगाया?–

इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी।
चदरिया झीनी झीनी बीनी॥

अध्यात्म जगत् में मेरुदण्ड में तीन नाड़ियों की मान्यता है। दाहिनी नाड़ी पिंगला का सम्बन्ध दाहिने स्वर से है। इंगला या इड़ा नाड़ी का सम्बन्ध बायें स्वर से है। इन दोनों के मध्य की नाड़ी सुषुम्ना है। कबीर कहते हैं– इंगला-पिंगला से हमने ताना और भरनी किया अर्थात् स्वाँस का भजन किया।

पूज्य महाराज जी का कहना था कि जो महात्मा लोग स्वाँस का भजन नहीं जानते, उनको महापुरुष अपनी कुटिया में दो रोटी भी नहीं देते थे क्योंकि वह स्वयं तो गुमराह है, घूम-घूमकर लोगों को पथभ्रष्ट ही करेगा; वह भजन से शून्य जो है।

जपने के नाम का उतार-चढ़ाव स्वाँस पर है। एक ही नाम को चार श्रेणियों से जपा जाता है– बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। नाम वही है, उसके साथ विशेषण बढ़ता जाता है। आरम्भ में नाम पर बैखरी का विशेषण है, उन्नत होने पर वही नाम मध्यमा, पश्यन्ती और परा के स्तर से गुजरता है।

सभी लोग आरम्भ में ही परा वाणी के स्तर का जप नहीं कर सकते; जैसे– शिशु या प्राथमिक कक्षा के छात्र परास्नातक या शोध की पुस्तक नहीं पढ़ सकते। आरम्भ में उन्हें वर्णमाला 'ए फार एप्पल', 'क माने कबूतर' सीखना ही पड़ता है। इसी प्रकार आरम्भिक स्तर पर प्रभु के नाम का जप 'ॐ-ॐ' या 'राम-राम' वाणी से इस प्रकार जपें कि सबको सुनाई पड़े। इस जप की ध्वनि वाणी से व्यक्त होती है इसलिए इसे बैखरी वाणी का जप कहा जाता है। मस्ती से प्रभु का नाम जपते जायँ।

जपने का द्वितीय स्तर मध्यमा है। मध्यम अर्थात् धीरे-धीरे आहिस्ता-आहिस्ता इस प्रकार से उच्चारण करें कि कोई पास बैठा हो तो उसे न सुनाई पड़े; आप अवश्य उच्चारण करें और सुनें भी। इस मध्यमा वाणी का जप कण्ठ की सहायता से होता है, कुछ जिह्वा का भी सहयोग रहता है। अनवरत जपते जायँ; जैसे– नीरव रात्रि में झींगुर बोलता है- झिन-झिन-झिन.....; क्रम ही नहीं टूटता; इसी प्रकार राम-राम कण्ठ से उच्चारण करें, कहें भी सुने भी, लेकिन पास बैठने वाले को पता न चले। बैखरी का उच्चारण स्पष्ट था, यह क्षीण स्वर में है, अन्तर इतना ही है, नाम वही है।

वाणी का तीसरा उन्नत स्तर पश्यन्ती है। पश्य का अर्थ है देखना। पश्यन्ती वाणी जप का उतार-चढ़ाव स्वाँस पर है, जिह्वा का इसमें कोई सहयोग नहीं मिलता। मन को द्रष्टा बनाकर खड़ा कर दें, आती-जाती स्वाँस का निरीक्षण करें कि श्वास कब अन्दर गयी, उसे जानें; भीतर कितनी देर रुकी, इसे जानें; कब बाहर आयी उसे जानें; बाहर कितनी देर रुकी उसे भी देखें; फिर अन्दर कब गयी, उसे देखें। दो-तीन बार अभ्यास के पश्चात् जब देखने की क्षमता आ जाय, आहिस्ते से, चिन्तन से उस श्वास में नाम को ढाल दें। श्वास अन्दर गयी तो 'ओम्' बाहर आई तो 'ओम्'! यदि 'राम' जपते हैं तो 'रा' और 'म'। स्वाँस भीतर लेते समय 'रा' की भावना और श्वास बाहर निकालते समय 'म' की भावना करें। स्वाँस से ही 'रा' और 'म' जपें। कुछ दिन तो इस प्रकार जपना पड़ेगा, फिर आप देखेंगे कि स्वाँस सिवाय नाम

के और कुछ कहती ही नहीं। कुछ दिन जप करते-करते स्वाँस में प्रसुप्त नाम जागृत हो उठेगा फिर **'जपै न जपावै, अपने से आवै'**– न तो आप जपें न जपने के लिए मन को बाध्य करें। एक बार नाम में सुरत लगा दें, नाम की डोर लग जायेगी, धुन बँध जायेगी– 'रा....म, रा.....म' या 'ओ....म्, ओ.....म्'। यही है– **'रा और म के बीच में कबिरा रहा लुकाय।'**– रा और म इन दो अक्षरों के अन्तराल में कबीर छिपकर रहते थे। अब, इतना बड़ा शरीर इन दो अक्षरों के बीच कैसे छिप गया?

वस्तुतः मनुष्य वहीं रहता है जहाँ उसका मन रहता है। कबीर अपने मन को इन दो अक्षरों के अन्तराल में रोकने में सक्षम हो गये थे। पश्यन्ती की पूर्ति और परा के प्रवेश में नाम स्वाभाविक रूप से श्वास में ढल जाता है। उस समय यह साधारण नाम मंत्र की संज्ञा पा जाता है। इसीलिए मन्त्र देने से नहीं आता, अनुभवगम्य है। साथ-साथ भगवान (गुरु महाराज) बताते जाते हैं कि बेटा! कब तुम कितना लग पाये और कितना नहीं, क्या गड़बड़ी है और कैसे सुधार करें? वह पीछे लग जाते हैं।

चौथी वाणी परा है। इसे परा इसलिए कहते हैं कि यह अब परम में प्रवेश दिला देनेवाली है। अब उस परमतत्त्व को पाने के लिए वाणी में परिवर्तन नहीं लाना पड़ेगा। इस श्रेणी के जप को अजपा कहा जाता है। अजप अर्थात् न जप! कोई तो नहीं जपता तो क्या हो गया अजपा? नहीं, यदि आप नहीं जपते तो अजपा नाम की कोई वस्तु भी आपके पास नहीं है। हम न जपें और जप हमारा साथ न छोड़े। एक बार स्वाँस में सुरत लगा दें तो तैल धारावत् श्वास खड़ी हो जाय। उस समय **'रिनक धिनक धुन अपने से उठे।'** उस अजपा की परिपक्व अवस्था में–

जप मरे अजपा मरे, अनहदहू मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताहि काल ना खाय॥

जप नितान्त आवश्यक है लेकिन जप मरे कब? जब अजपा जागृत हो जाय। अजपा मरे कब? जब अनहद की धुन जागृत हो जाय। अनहद

भी समाप्त हो जाती है। कब? जब सुरत शब्द में समाहित हो जाय। सुरत मन की दृष्टि का नाम है। मन सब ओर से सिमट कर पहले तो स्वाँस में लगे। सुरत से वह देख रहा था शब्द को, स्वाँस का जप कर रहा था। वह सुरत शब्द में समा जाय और केवल शब्द मात्र शेष रह जाय, सुरत से देखने का भान न रह जाय। जिस क्षण यह अवस्था आयी, दूसरे ही क्षण काल से अतीत जो अकाल पुरुष है उसका दर्शन, उसमें स्थिति और उसकी रहनी मिल जायेगी। फिर न उसे कुछ पाना शेष है, न सृष्टि में कुछ मिटाना शेष है और न ही कोई भय। इस प्रकार योग-साधना में जप का उतार-चढ़ाव स्वाँस के ऊपर है।

यही सन्त कबीर कहते हैं– **'इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी।'** स्वाँस-प्रस्वाँस का यजन– यह तो ताना भरनी हो गया और यजन करते-करते साधना इतनी सूक्ष्म हो गयी कि 'सुखमन' अवस्था आ गयी– मन सुखपूर्वक श्वास में प्रवाहित हो गया। आज आप भजन में मन लगाने का प्रयास करते हैं तो मन भागता है, अन्य-अन्य संकल्प-विकल्प करने लगता है। भजन के नाम पर बैठने पर कभी सरदर्द करने लगता है, कभी चक्कर आने लगता है, भूत-भविष्य की कल्पनाएँ करने लगता है, किन्तु पश्यन्ती की पूर्ति और परा के प्रवेश के साथ ही वही मन की खुराक हो जाता है, वही मन का जीवन हो जाता है, मन को भजन में सुख मिलने लगता है। सुखमना अवस्था में चद्दर तैयार हो जाती है। उस समय चित्त अतिसूक्ष्म कण-कण में व्याप्त परमात्मा के रंग में रँग जाता है। आरम्भ में जिस चित्त का विस्तार बहुत बड़ा था साधना से सिमटते-सिमटते अतिसूक्ष्म, सबके हृदय में निवास करनेवाले परमात्मा के तारों में बुन उठा। पहले वही चित्त भाग रहा था। कहाँ भागता है? प्रकृति में!

आठ कँवल दल चरखा डोले, पाँच तत्त गुन तीनी।

आप भजन में लगते हैं किन्तु चित्त का चरखा डोलता रहता है। यह जाता कहाँ है? अष्टधा मूल प्रकृति, पाँच तत्त्व और तीन गुणों में जाता है।

माया का मूल इतना ही है इसलिए इसे मूल प्रकृति कहते हैं। प्रकृति में विद्या और अविद्या दोनों हैं। अविद्या मल है, अंधकार है और विद्या प्रकाश है, निर्मल है। संसार में रहते हुए यदि संकल्प भी आये तो कमल की तरह! कमल जल में रहता है, लहरें आती हैं किन्तु जल उसे गीला नहीं कर सकता। कीचड़ में रहते हुए भी वह उससे निर्लेप है। चित्त संसार में भागता है, किन्तु संसार में इस प्रकार रहे जैसे जल और कीचड़ में भी कमल रहता है। चित्त संसार से विकार लेकर न आये बल्कि निर्दोष निर्मल ईश्वरीय विभूति से ओतप्रोत होकर जीवनयापन करना चाहिए। प्रश्न उठता है क्या आपने स्वयं भजन कर लिया, चदरिया बुन ली? स्वाँस का भजन क्या आप कर लेंगे? कबीर अगली पंक्ति में बताते हैं– नहीं,

साईं को सिअत मास दस लागे।

साईं अर्थात् स्वामी, सद्गुरु, भगवान! जिस परमात्मा की हमें चाह है वह! सद्गुरु वाणी से साधक को तभी तक समझाते हैं जब तक आपकी आत्मा से अभिन्न होकर खड़े नहीं हो जाते। ज्योंही वह आत्मा से संचारित हो गये वह वाणी से दस-पाँच प्रतिशत ही बताते हैं और हृदय से ही सम्पूर्ण उपदेश देते रहते हैं कि हमारा भजन कब सही है, कब गलत है, कब उद्वेग या व्यवधान आनेवाला है। इसकी जानकारी वह हृदय से देते रहते हैं। वह संकेत करते रहते हैं कि अब इधर चल, अब बैठ जा, यह काम न कर, इसे कर! उदाहरण के लिए आप घोर अँधेरे में चले जा रहे हैं। अगले कदम पर सर्प है, वह आपको काट लेगा। भगवान कह देंगे कि बस, खड़े हो जाओ। आप खड़े हो जाइए। जब सर्प निकल जायेगा तब संकेत मिलने लगेगा कि ठीक है, अब आगे बढ़ो। इस तरीके से प्रकृति का खोह-खंदक बचाते हुए भगवान लक्ष्य तक की दूरी तय करा देते हैं। इसलिए भजन करता तो साधक है लेकिन उसके द्वारा जो पार लग जाता है वह उन महापुरुष की देन है, इसलिए–

साईं को सिअत मास दस लागे, ठोंक ठोंक के बीनी।

भगवान ठोंकाई भी करते हैं। जब परमात्मा से मिलने की स्थिति समीप आ जाती है भगवान परीक्षा लेते हैं कि यह मन-क्रम-वचन से मुझमें अनुरक्त है या अभी इसमें कुछ माया है?

पार्वती भगवान शिव के लिए भजन कर रही थीं। परमात्मा राम ने शंकर जी से अनुरोध किया। भोलेनाथ ने सप्त ऋषियों को बुलाया कि जाकर परीक्षा लो कि उसकी लगन कैसी है? सप्तर्षि गये। पार्वती से उन्होंने पूछा– "आप किसकी कन्या हैं?" उन्होंने बताया– "हिमाचल नरेश की।" ऋषियों ने पूछा– "इतना कठोर तप करके आप चाहती क्या हैं?" उन्होंने कहा– "मैं सदैव शिव को पतिरूप में चाहती हूँ।" ऋषियों ने कहा– "ऐसा उपदेश आपको किसने कर दिया?" पार्वती ने कहा– "नारद जी ने।" ऋषियों ने कहा– "देवी! वह धूर्त है। चित्रकेतु का घर उसने नष्ट किया। हिरण्यकशिपु के साथ भी यही हुआ। दक्ष प्रजापति के लड़के उनका उपदेश सुनकर घर ही नहीं लौटे। नारद का उपदेश सुनकर आज तक किसी का घर बसा है क्या? **'भल भूलिहु ठग के बौराये'**– तुम उस ठग के बहकावे में आ गयी। वह तो ठग है।" पार्वती ने उत्तर दिया–

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ।।
गुर के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

(मानस, 1/79/7-8)

तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू।।

(मानस, 1/80/6)

भगवान शिव सौ बार कहें तब भी मैं नारद जी के उपदेश को त्याग नहीं सकती। गुरु के वचनों में जिन्हें विश्वास नहीं है, उसे स्वप्न में भी न सुख है न सिद्धि! उसके लिए न तो यह लोक है और न परलोक! सप्तर्षि लौट गये।

पार्वती की तपस्या अनवरत चलती ही रही। सप्तर्षि पुनः उनके पास आये और कहा– "अभी तुम तपस्या कर ही रही हो? गजब हो गया। शंकर

जी ने तो कामदेव को जला दिया। अब विवाह किससे करोगी? किन्तु चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। हमारी दृष्टि में तुम्हारे लिए एक अच्छा-सा वर है। वह हैं विष्णु – बैकुण्ठ के निवासी! अखण्ड समृद्धि! अपरिमित ऐश्वर्य! शिव के पास तो मात्र एक बूढ़ा-सा बैल है।'' शैलजा ने उत्तर दिया–

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।।

(मानस, 1/80)

ऋषिवरो! माना कि शिवजी सारे दुर्गुणों की खान और विष्णु सारे सद्‌गुणों के भण्डार हैं, फिर भी जिसका मन जिसके साथ रम गया, उसका उसी से प्रयोजन होता है। आपकी दृष्टि में शिव ने अब कामदेव को जलाया। अब तक वे विकारी थे? किन्तु हमारी दृष्टि में शंकर सदैव अकाम, अविकारी, अभोगी और पूर्ण योगी हैं। यही समझकर यदि हमने शिव की उपासना की है तो भगवान मेरे प्रण को अवश्य पूर्ण करेंगे। यदि शादी-विवाह की बिचवई किये बिना आपलोगों से नहीं रहा जाता तो ऋषिवरो! संसार में वर-कन्या बहुत हैं, आप वहाँ प्रयास कीजिए। बहुत विलम्ब हो गया, अब आप सब अपने घर को प्रस्थान करें। सप्तर्षियों ने देखा कि हमलोग इन्हें विचलित नहीं कर पायेंगे, उन्होंने माता पार्वती को प्रणाम किया और लौट गये। शंकर जी ने भी परीक्षा ली, पार्वती उत्तीर्ण रहीं।

इन्हीं परीक्षाओं में अनेकानेक ऋषि-मुनि असफल होते रहे हैं। उदाहरण के लिए **'शृंगी की भृंगी करि डारी, पारासर के उदर विदार।'**– असफल होने पर भी यह लोग साधना में लगे ही रह गये। यही है **'ठोंक ठोंक के बीनी।'** प्रह्लाद को कितनी यातनाएँ झेलनी पड़ीं। मीरा को शूली पर लिटाया गया, विषपान कराया गया, सर्प का हार पहनाया गया, देश निकाला दे दिया किन्तु मीरा जब मेड़ता से निकली, लोगों को अग्रिम सूचना-संकेत मिलने लगे। लोग स्वप्न देखने लगे कि मीरा आ रही है। वृन्दावन में भीड़ मीरा की प्रतीक्षा कर रही थी। वहाँ मीरा के भजन सुननेवालों का ताँता लग

गया। पहले मीरा चित्तौड़ की महारानी थी, अब जगत् की महारानी हो गयी। किन्तु इतने दिनों में मीरा की कितनी ठोंकाई हुई? भगवान चाहते तो जहर ही न आता, शूली ही न होती, देश से निष्कासन ही न होता! अस्तु, भगवान अपने भक्त की परीक्षा लेते हैं। इतनी बड़ी उपलब्धि प्रदान करना है, अपना स्वरूप, अपना धाम देना है। प्रभु पात्रता का परीक्षण करते हैं। वह माया को आदेश देते हैं कि जरा इसे ठोंक, बजा! इसीलिए हमलोगों की दृष्टि में कोई माया नहीं आती, भगवान की अनुकम्पा ही समझ में आती है, चाहे वह कुटिल रूप में ही क्यों न आये! माया का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है।

'साईं को सिअत मास दस लागे'– दस मास अर्थात् दसो इन्द्रियाँ– पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय– इनमें जब तक आशा का सूत्र लगा है तब तक चद्दर माया में रँगी है, अभी वह अति सूक्ष्म परमात्मा में नहीं रँगी, आकाश से भी महान्, कण-कण में व्याप्त झिनबे में नहीं रँगी, बल्कि कुछ न कुछ माया में वासनाओं में आशा लगाये हुए हैं। जहाँ इनमें से आशाओं का सूत्र टूटा, चादर तैयार हो जाती है।

साधक मात्र नाथा हुआ बैल है। बैल कभी हल नहीं जोतता। हल तो हलवाहा जोतता है जो बैल के पीछे लकड़ी लेकर चलता है। आधुनिक परिवेश में ट्रैक्टर हल नहीं जोतता। हल ड्राइवर जोतता है। ट्रैक्टर को कहाँ आँख या बैल को इतना ज्ञान कहाँ कि हल कैसे जोता जाता है? इसी प्रकार साधक में क्षमता कहाँ कि वह भजन कर ले। भजन भगवान करते हैं, साधक तो उसके हाथ का यंत्र मात्र है। यंत्र हमें बनना पड़ेगा फिर तो थोड़ी बहुत ठोंकाई के बाद भगवान साधक की बागडोर अपने हाथ में ले लेंगे और **'जाके रथ पर केसो। ता कहँ कौन अँदेसो।'** अंत में कहते हैं– इस चादर को ओढ़ा किसने?

'सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ के मैली कीन्हीं।'– इस चद्दर के ओढ़ने वाले तीन लोग हैं– सुर, नर और मुनि! सुर उसे कहते हैं जिसके

हृदय में दैवी सम्पद् ढल गयी हो, जो सुरा में विचरण की क्षमता रखता हो। सुर योग-साधना की एक श्रेणी है, परमदेव परमात्मा को विदित करा देने वाली वृत्ति है जो स्वभाव में ढल गयी है। दैवी सम्पद् ने जिसके हृदय में स्थायित्व ले लिया है, वह देवताओं जैसा है। उसके पास चद्दर है। उसके पास भजन के अन्तराल में अति सूक्ष्म ब्रह्म से बीनी हुई चित्तवृत्ति है।

दूसरे लोग हैं मुनि, जो मननशीलता की सीमा पर पहुँच गये हैं। जिसकी मनसहित इन्द्रियाँ मौन हैं उसे मुनि कहते हैं। उस स्तर के साधक के पास भी चद्दर होती है। उन पर भगवान की अनुकम्पा है और उनके संरक्षण में भजन है। उनका चित्त प्रभु से ओत-प्रोत है। भगवान के अन्दर सराबोर, बुना हुआ, गूँथा हुआ है।

तीसरी श्रेणी नर की है। सामान्य मनुष्य नर नहीं है और न माताएँ इस अर्थ में नारी हैं। नर भजन-पथ में एक अवस्था का चित्रण है। गोस्वामी जी ने रामचरितमानस की रचना की जिसमें उन्होंने मानस-रोग भी गिनाये–

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।

(मानस, 7/120/29)

मोह सम्पूर्ण व्याधियों का मूल है। इससे अनन्त शूलों की सृष्टि होती है; जैसे–

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।

(मानस, 7/120/29)

काम वात का रोग, कफ लोभ और क्रोध पित्त का रोग है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।

(मानस, 7/120/31)

जिस हृदय में काम-क्रोध-लोभ– तीनों भाई एक साथ मिलकर क्रियाशील होते हैं तो दुःखदाई सन्यपात रोग हो जाता है। सन्निपात अर्थात्

'आसन्न निपात' (निकट मृत्यु)। वह जलन और वेदना से तड़पता रहता है, न दिन चैन न रात। इतना ही नहीं,

अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।

(मानस, 7/120/35-36)

अहंकार गाँठ का दर्द है। दम्भ, कपट, मद और मान नसों का रोग है। तृष्णा उदरवृद्धि का भयङ्कर रोग है। इस प्रकार पन्द्रह-पचीस रोगों का चित्रण किया। अन्त में मानसकार ने निर्णय दिया–

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हि संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।।

(मानस, 2/121 क)

उपर्युक्त व्याधियों में से एक भी व्याधि यदि स्पर्श कर ले तो नर मर जाता है। नर कोई ऐसा स्वरूप है जिसके पास ये रोग नहीं हैं– काम-क्रोध-लोभ-मोह-आशा-तृष्णादिक विकार नहीं हैं किन्तु आक्रामक के रूप में सब-के-सब खड़े हैं, मरा इनमें से कोई नहीं है। कदाचित् किसी रोग ने स्पर्श कर दिया तो '**एक ब्याधि बस नर मरहिं**।'– नर मर जाता है और कदाचित् सभी रोग किसी के पास हैं तो वह जीव है, जड़ है, उसे समत्व प्राप्त होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। नर वह है मायारूपी नारी के प्रभाव से जिसका चिन्तन निर्लेप है। ऐसी स्थितिवाले नर श्रेणी के पास यह चद्दर है। जो झीना है, पृथ्वी-पाताल, चतुर्दिक, जर्रे-जर्रे में सर्वत्र विद्यमान है, दिखायी नहीं देता, उस परमात्मा से जिसका चित्त सराबोर है, उनके पास चद्दर की पकड़ है लेकिन '**ओढ़ के मैली कीनी**'– सुर, नर, मुनि तीनों के पास चद्दर की पकड़ है लेकिन तीनों ने ओढ़कर इसमें दाग लगा दिया अर्थात् इन तीनों स्थितियों में माया कामयाब हो जाया करती है। माया इस स्थितिवालों को भी पकड़कर घसीट सकती है।

काबुल में एक सन्त हुए हैं। बचपन में ही वह गृह त्यागकर साधु हो गये। वह आजीवन उन्मत्त पागल की तरह भजन करते रहे। उनकी आधी उम्र

तक लोगों ने सोचा– यह पागल हैं किन्तु आधी आयु बीतते-बीतते लोगों के मन में ऐसी प्रेरणा होने लगी कि नहीं, नहीं, यह महापुरुष हैं। उनकी आयु लगभग पचहत्तर वर्ष हो चली थी। वह घनघोर जंगल के किनारे झाड़ियों में एक साधारण-सी कुटी में निवास करते थे। वहाँ आदिवासी लोगों का आना-जाना था।

एक दिन उनके परीक्षा की घड़ी आयी। अतीव सुन्दरी एक शहजादी उनके समक्ष आकर खड़ी हो गयी। उसकी वेशभूषा भी राजसी थी। महात्मा को दया आ गयी– अरे! यहाँ शेर-चीता चारों ओर हैं। यहीं जल का भी एक स्रोत है जहाँ वन्यजीव पानी पीने आते ही रहते हैं क्योंकि अन्यत्र क्षेत्र में कहीं जल भी नहीं है। यदि यह पगडंडी से जंगल में भटक गयी तो बेचारी प्राणों से भी हाथ धो बैठेगी। महात्मा ने विचार किया– इसे रास्ता बता दूँ।

महात्मा ने उससे पूछा– "तुम कौन हो? कोई तुम्हारे साथ है या नहीं?" वह मुस्कुराई और पीछे हट गयी। महात्मा बोले– "अरे! यह जंगल है। रास्ता भटक जाओगी तो मर भी जाओगी। तुम्हें कहाँ जाना है? बता दो तो मैं रास्ता बता दूँ।" वह और भी पीछे हट गयी। महात्मा खड़े हो गये। उन्हें और भी दया आ गयी– लगता है बड़े घर की है, लाड़-प्यार में पली है इसलिए उच्छृंखल लगती है। उन्होंने पुनः पूछा– "बता तो!" वह दौड़ने लगी, बाबा भी उसके पीछे भागने लगे।

महात्मा सोचते जा रहे थे, यह रुक जाती तो इसे रास्ता बताते। यदि यही चाल रही तो मैं कहाँ तक दौड़कर इसे बचा पाऊँगा। लगता है यह आज जंगली जीवों द्वारा अवश्य मारी जायेगी। दौड़ते-हाँफते बाबा एकाध किलोमीटर निकल गये। नयी उम्र की लड़की के साथ बाबा कहाँ तक दौड़ते! हताश होकर वह खड़े हो गये– मरे चाहे जीये, जाने दो। यह कुछ बताती भी तो नहीं!

तब तक आकाशवाणी हुई– जो पूरी जिन्दगी बड़े वेग से जन्नत की ओर भागा जा रहा था, आज वही उतने ही वेग से दोज़ख की ओर भागा

जा रहा है। आज से चौथे दिन तुम्हें नबूबत (अवतार की स्थिति) मिलनेवाली थी लेकिन तुम चूक गये! इतना सुनना था कि महात्मा ने कुल्हाड़ी उठाया और अपना पाँव काट डाला कि इन पैरों का दोष है, जबकि गरीब पाँवों का कोई दोष ही नहीं था। दोष तो मन का था किन्तु मन दिखायी दे तब न काटें। महात्मा के मन में उस लड़की के प्रति कोई दुर्भावना नहीं थी; किन्तु भजन छोड़कर वह लोक-व्यवहार में दयावश चले गये थे। इसीलिए कहा गया है– **'दया बिन सन्त कसाई। दया करी तो आफत आई।।'** सीताजी रावण पर दया कर रेखा से बाहर चली आयीं तो उन्हें लंका जाकर भोगना पड़ा। मनुष्य आज की परिस्थिति जानता है लेकिन भगवान जानते हैं कि आज का परिणाम दो महीने पश्चात् क्या निकलेगा? वह महात्मा भजनानन्दी थे। आजीवन तपस्या ही की थी उन्होंने! थे तो वह चद्दरवाले! दैवी सम्पद् प्रवाहित थी उनमें! विकारों से निर्लेप वह नर भी थे। उनकी मनसहित इन्द्रियाँ भी मौन थीं, समाज में कभी कुछ बोले ही नहीं; किन्तु परीक्षा की घड़ी आयी तो दाग लग ही गया– **'यह चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ के मैली कीन्हीं'**। दाग तो लग गया, एक जन्म का झटका तो लग गया; किन्तु–

दास कबीर जुगुत सों ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं।
चदरिया झीनी झीनी बीनी।।

दास अर्थात् सेवक, समर्पित भक्त; प्रभु के हाथ में यन्त्र बनकर चलनेवाला पथिक। वह कहते हैं– सुर-नर-मुनि ने वह चादर ओढ़कर मैली कर दी; किन्तु कबीर ने उस चदरिया को ओढ़कर ज्यों-की-त्यों रख दी। वास्तव में, जिस प्रकार सुर-नर-मुनि योग-साधना की स्थितियाँ हैं, उसी प्रकार 'कबीर' शब्द भी एक अवस्था का चित्रण है। काया का वीर स कबीर! जो काया पर अंतिम विजय प्राप्त कर लेता है, फिर न विद्या है न अविद्या है; सुख है न दुःख है; माया है न आगे पाने के लिए कोई ब्रह्म है– इस प्रकार काया पर पूर्ण विजय की जिस क्षण स्थिति आई तो **'ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया'**। जो सहज है, स्वयंसिद्ध है, **'बिधि न बनाये हरि आपु बनि आये।'** जैसा है, उसी स्थिति में अपने को प्रवाहित कर दिया–

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल॥

भगवत्प्राप्ति की खुमारी जब चढ़ी तो सर्वत्र ईश्वरमयी दृष्टि हो गयी– **'जित देखूँ तित लाल'**। यह तो वैसा ही है कि–

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥

जहाँ भी ऐसे भक्त की दृष्टि पड़ी, अपने आराध्य देव को खड़ा पाया, अर्थात् **'जित देखूँ तित लाल'** और **'लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल।'**– जहाँ उस मूल का स्पर्श किया तो हम भी उसी रंग में रँग गये। पूज्य महाराज जी कहते थे– नमक की एक पोटली समुद्र की थाह लेने चली, घुलकर वह भी समुद्र हो गयी। अब लौटकर संदेशा कौन दे? यही है ज्यों-की-त्यों चदरिया रख देना।

आरम्भ में हर साधक का चित्त कठोर होता है। वह काम-क्रोध, राग-द्वेष का पूरा संसार भरकर खड़ा है। तुलसीदास जी ने कहा–

विटप-मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये॥

(विनय-पत्रिका, 124)

एक वृक्ष के अन्दर नाना प्रकार के फर्नीचर विद्यमान हैं। आप उससे दियासलाई, कुर्सी-टेबल जो चाहें बना लें, उसमें ये सब मौजूद हैं। यद्यपि आप लकड़ी फाड़े, उसमें टेबल-कुर्सी नहीं दिखाई देगा। एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ये गठित होते हैं। इसी प्रकार सूत के तन्तु में नाना प्रकार के वस्त्र– कुर्ता बनाओ, पैण्ट-शर्ट बनाओ, पैराशूट बना लो– सब उसके अन्तराल में विद्यमान हैं। ठीक इसी प्रकार मन के अन्तराल में विधाता की सृष्टि के सारे मॉडल विद्यमान हैं। जब जिसका क्रम आता है, यह मन पिण्डरूप में उन्हें फेंकता रहता है। इस प्रकार चित्त इतना बड़ा है जितना संसार।

असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे।।

(विनय-पत्रिका, 124)

एक मूल्यवान् मणि में असन माने भोजन, बसन माने वस्त्र, धन-धाम, इज्जत-प्रतिष्ठा, सवारी-साधन– सब विद्यमान हैं; ठीक इसी प्रकार मन के अन्तराल में स्वर्ग-नरक इत्यादि चराचर लोक विद्यमान हैं। जब जिसका संस्कार आता है, आकार धारण करता जाता है।

यह चित्त प्रकृति में घुला-मिला है। इसे उधर से खींचकर राम-रस से धुलाई करें और झिनवा-सा बीन दें। झीना अर्थात् सूक्ष्म! आत्मा ही सूक्ष्म है। इसे शस्त्र नहीं काट सकते, आग नहीं जला सकती, वायु नहीं सूखा सकता, आकाश विलय नहीं कर सकता और न ही यह कुछ होकर भी अन्य कुछ होनेवाला है। यह सदा एकरस, शाश्वत और सनातन है। यह सर्वत्र व्याप्त है, यहाँ भी विद्यमान है। उस अति सूक्ष्म ब्रह्म के धागे में हमने अपने चित्त को बुन दिया– जहाँ सुख नहीं, दुःख नहीं; प्रकृति भी नहीं है; इसलिए सबको भजन ही करना चाहिए।

भजन का उतार-चढ़ाव चित्त के ऊपर है। शरीर तो भजन करने के लिए आपको मकान मिला है, स्थान मिला है। इसलिए मनसहित इन्द्रियों को बस में करें और मन को सब ओर से समेटकर गुरु महाराज के चरणों में लगा दें।

वैदिककाल के महात्मा लोग 'ॐ' का जप करते रहे। इसीलिए महापुरुषों ने इस पर बल दिया– **'एक ओंकार सतगुर प्रसादि!'** उस ओंकार को हम ढूँढ़ नहीं सकते। वह जब कभी किसी को मिला है तो **'सतगुर प्रसादि'**– सद्‌गुरु के कृपा-प्रसाद से ही प्राप्त होता है, अन्य कोई तरीका है ही नहीं। उस परमात्मा को प्राप्त करने की कुञ्जी सद्‌गुरु हैं। वहाँ तक पहुँचने का रास्ता सत्‌गुरु से होकर गुजरता है।

भक्तिकाल के महापुरुषों ने जप के लिए 'राम' शब्द का अधिक प्रयोग किया है। वस्तुतः 'राम' शब्द 'ओम्' का ही हिन्दी अनुवाद है। **'रमन्ते योगिनः यस्मिन् स रामः।'**– जिसमें योगी लोग रमण करते हैं, उनका नाम 'राम' है। ॐ या राम दोनों का आशय एक, जपने में सुविधा एक जैसी और परिणाम भी एक ही है। अतः आप भी सन्त कबीर की तरह अपने चित्तरूपी चदरिया को झिनवा-सा बीनने में संलग्न हो जायँ।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 17:2)

करमाँरी रेखा न्यारी-न्यारी

पुरुष पारस होता है। जिनको आप मासूम छोटा बच्चा कहते हैं, सबलोग जिनके पालनहार होने का दावा करते हो, वास्तविकता तो यह है कि उनका पालनहार कोई और है। सच पूछो तो अधिकांशतः वह स्वयं हैं। बहुत-से बालक ऐसे भी हैं जिनके पालनहार ही नहीं बचे। उदाहरण के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी का ही जीवनवृत्त लें। जन्मते ही माता मर गयी। चार-छः महीने भी नहीं गुजरे कि पिताजी भी चल बसे। पाँच वर्ष भी नहीं बीते कि देखरेख करनेवाली दासी चुनिया भी मर गयी। अब, लावारिस बच्चा! गलियों में इधर-उधर लुढ़कने लगा। किसी ने दयावश दूध पिलाया तो वही मर गया। गाँवभर कहने लगा कि यह तक्षक है। जो इसे खिलाये-पिलायेगा, यह उसी को काट खायेगा। इन्हीं विषम परिस्थितियों में वह अनाथ बालक शनैः-शनैः बड़ा होने लगा। विचार करें उसका पालनहार कौन था? माता-पिता-अभिभावक कोई भी तो नहीं रह गये, फिर भी पालन हुआ।

एक बार एक महापुरुष की दृष्टि उन पर पड़ी। वह थे स्वामी नरहर्यानन्द जी। उन्होंने गाँववालों से पूछा– यह बालक कौन है? लोगों ने बताया– महाराज! इतना अभागा लड़का सृष्टि में शायद ही कभी जन्मा हो! बेचारा, गरीब, मनहूस, दीन-हीन-असहाय दुःखी-दरिद्र जितनी उपाधियाँ थीं गाँववालों ने सब उसी के ऊपर लगा दिया। महात्मा दयालु थे। वह उसे

अपने साथ शूकरक्षेत्र (सोरो) ले गये, रामकथा हृदयंगम कराया; काशी में शेष सनातन से वेद-वेदाङ्ग की शिक्षा दिलायी।

शिक्षा ग्रहणकर तुलसीदास जी जन्मभूमि लौट आये। परिणय-सूत्र में बँधे और नवपरणिता वधू के साथ सुखपूर्वक जीवनयापन करने लगे। पत्नी में इतना लगाव हो चला कि वह उसे मायके जाने ही न देते। एक बार तुलसी घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी अपने भाई के साथ मायके चली गयी। तुलसी को जानकारी हुई तो वह भी ससुराल चल पड़े। रात्रि का समय था। जमुना में भयङ्कर बाढ़ आयी हुई थी फिर भी पत्नी का वियोग न सह पाने के कारण तुलसी नदी में तैर चले किन्तु भँवर में फँसकर डूबने लगे। संयोग से वहीं एक लाश भी चक्कर काट रही थी। उसका सहारा लेकर तुलसी ने किसी प्रकार यमुना पार की और आधी रात होते-होते ससुराल पहुँच गये।

वहाँ चारों तरफ सन्नाटा था। मकान पर एक सर्प लटक रहा था जिसे रस्सी समझ तुलसी ऊपर चढ़ गये और पत्नी के कक्ष तक पहुँच गये। पत्नी ने पूछा– "अरे! इतनी रात! आप आये किस रास्ते से? दरवाजा किसने खोला?" तुलसी ने बताया– "प्रिये! तुमने रस्सी जो लटका रखी थी।" पत्नी ने दीपक के प्रकाश में देखा तो घबड़ा गयी; पूछा, "नदी कैसे पार किया?" तुलसी ने बताया– "एक लाश मिल गयी थी। तुम्हारे प्रेम ने उसे नाव का रूप दे दिया।" पत्नी भले घर की थी, मानी-सम्मानी थी, बिगड़ खड़ी हुई। उसने सोचा– इन्हें यहाँ इस प्रकार आया देख लोग क्या सोचेंगे! यह कितने विषयलोलुप हैं। उसने कहा– "इस हाड़-मांस से बने पुतले में आपको जितना प्रेम है, उसका आधा भी भगवान में होता तो बेड़ा पार हो जाता। आप दो बार मरने से बचे हैं– एक बार यमुना में, दूसरी बार विषधर से! तीसरी सबसे बड़ी मृत्यु है लोकलज्जा। हम लोगों को जबाव क्या देंगे? इतना आवारा है तुम्हारा पति?" एक बार-दो बार तो तुलसी को कुछ सुनाई न पड़ा किन्तु तीसरी बार जब कानों में भली प्रकार बात पड़ी कि आधा प्रेम भगवान में होता तो बेड़ा पार हो गया होता। तुलसी ने तुरन्त उस दरवाजे को प्रणाम

किया, उस देवी को प्रणाम किया, ऊपर से कूदकर भाग आये। तुलसी तुलसीदास हो गये।

लीला करन चहत प्रभु जबहीं। कारन खड़ा करत हैं तबहीं।।

भगवान जब किसी को बुलाना चाहते हैं तो ऐसा कारण खड़ा कर देते हैं कि बचकर भागने को जमीन ही नहीं मिलती, उसे जाना ही पड़ेगा। जिनको बिना देखे हम जी नहीं सकते, जीना भी नहीं चाहते, उनको देखने का मन नहीं करेगा। वहाँ काल दिखायी पड़ेगा। तुलसी को काल ही दिखाई पड़ा, निकल खड़े हुए और अपना गन्तव्य पा लिया। इस प्रकार पुरुष पारस होता है। बच्चे स्वयं अपना भाग्य लेकर आते हैं और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं।

इस सम्बन्ध में पूज्य गुरु महाराज एक कथानक सुनाया करते थे। एक राजकन्या थी बड़ी होनहार! बड़ी सुलक्षणा! गुलफाम की तरह! वह जब शादी लायक बड़ी हो गयी तो राजा ने अपने कुल पुरोहित को, जो जंगल में पाठशाला चलाते थे, बुलवाया। राजा ने उनसे निवेदन किया– ''पंडित जी! इसके ग्रह-नक्षत्र-लग्न इत्यादि का विचार कर लें।'' पंडित जी ने गणित लगाया कि यह रानी नहीं, महारानी होगी। लक्ष्मी कभी इसका साथ नहीं छोड़ेंगी। जिसके साथ इसका विवाह होगा वह युद्ध में कभी पराजित नहीं होगा। यह समृद्धि और यश की स्वामिनी होगी। इससे दोनों कुल यश के भागी होंगे। अब तो नारदवाली दशा पंडित जी की हो गयी। उन्होंने विचार किया कि इससे विवाह कर क्यों न हमीं महाराजा हो जायँ।

मनन-चिन्तन के पश्चात् पंडित जी बोले– ''राजन्! कन्या तो सुलक्षणा है किन्तु इसमें जरा-सी खोट है। यदि इसका विवाह कर सही सलामत यहाँ से विदा करते हैं तो जहाँ जायेगी उस वंश का नाश करेगी और यहाँ भी आपका सर्वनाश हो जायेगा।'' राजा ने पूछा, ''पंडित जी! इस दोष के निवारण का क्या कोई उपाय है?'' पंडित जी ने कहा, ''राजन्! उपाय तो

है किन्तु कठिन है। हीरे-जवाहरात वाले जेवरों से सुसज्जित कर इसे लकड़ी के हवादार सन्दूक में बन्दकर गंगा की धारा में प्रवाहित कर दें। अयाचित इसे कोई पा जायेगा तो जहाँ जायेगी, महारानी होगी। इसके पश्चात् इसके जीवन में कभी कोई अभाव नहीं रहेगा।''

इकलौती पुत्री के हित के लिए राजा ने छाती पर पत्थर रखकर, दोनों वंशों की सुरक्षा के लिए सन्दूक तैयार कराया और हीरे-जवाहरात सहित कन्या को सन्दूक में बन्द कर नदी में प्रवाहित कर दिया। राजपरिवार आँसुओं से भींगा था। पण्डित जी ने विदाई का मंत्र पढ़ा और शीघ्रता से पाठशाला पहुँचे। उन्होंने शिष्यों से कहा– ''देखो, आज तुमलोगों की छुट्टी है।'' बच्चे बहुत प्रसन्न हुए। पंडितजी ने कहा– ''लेकिन तुमलोगों को एक काम करना है। एक सन्दूक नदी में बहता हुआ आ रहा है, उसे नदी से निकालकर मेरे कमरे में रख दो। मैं भी उसी कमरें में रहूँगा। कुछ अनुष्ठान है। बाहर से कमरा बन्द कर देना। कितना भी शोरगुल हो, दरवाजा मत खोलना। मैं कहूँ तब भी दरवाजा मत खोलना।'' लड़के बहुत खुश हुए। वे चड्ढी-कच्छी पहनकर नदी के किनारे सन्दूक की प्रतीक्षा करने लगे।

होनी कुछ और ही थी। एक राजकुमार जंगल में शिकार खेलने निकला था। वह झाड़ियों के बीच से नदी के प्रवाह तक आया और अपने घोड़ों को पानी पिलाने लगा। सौ-पचास घुड़सवार उसके साथ थे। उसकी दृष्टि उस मनोरम मंजूषा पर पड़ी। उसने सेवकों से कहा। वे गंगा की धारा में कूद पड़े और सन्दूक को किनारे ले आये। पिटारी खोलने पर उसमें से एक विश्वसुन्दरी कन्या निकली। राजकुँवर ने पूछा– ''देवी! आप कौन हैं? अपना परिचय दें।'' राजकन्या ने कहा, ''परिचय क्या? अब तो आप ही मेरे सर्वस्व हैं।'' सिपाहियों ने ताली बजायी। कुँवर ने अंगूठी पहनाकर कन्या से गन्धर्व विवाह कर लिया। शिकार में सिपाहियों ने एक जीवित भालू पकड़ रखा था। विनोदवश लोगों ने उस रीछ को उसी मंजूषा में बन्द कर पुनः गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया।

पाठशाला के समीप नदी में तैरते हुए सन्दूक को देखकर बच्चे कूद पड़े, सन्दूक उठाकर कमरे में रख दिया। धड़कते दिल से पंडितजी भी 'स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः' कहते हुए कमरे में घुसे। कमरा बन्द हो गया। पंडित जी 'द्यौः शान्तिः अन्तरिक्ष शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापोशान्तिः', 'सर्वेग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु' शान्ति-पाठ करते हुए जहाँ सन्दूक खोला, भूखा-प्यासा रीछ पंडित जी के ऊपर टूट पड़ा। पंडितजी चिल्लाये– बचाओ-बचाओ। लड़के दौड़े तो मॉनीटर ने कहा– "नहीं, गुरुजी ने कहा था– 'मैं कहूँ तब भी मत खोलना।' अनुष्ठान तो अनुष्ठान! गुरुओं के अनुष्ठान भी तो विलक्षण होते हैं।"

थोड़ी ही देर में पंडितजी को आभास हो गया कि अब मौत निश्चित है। एक खड़िया उनके हाथ लगी। उन्होंने दीवाल पर लिख दिया–

ममो इच्छा दैव नास्ति, दैव इच्छा परबलम्।
राजद्वारे राजकन्या, विप्र भालू भच्छतम्।।

अस्तु, पुरुष पारस होता है। उस कन्या का भाग्य समय पर काम कर गया।

परमहंस आश्रम–मधवापुर की एक घटना है। पूज्य गुरु महाराज ने साधनावस्था में वहाँ निवास किया था। महाराज जी के अनुसुइया निवासोपरान्त भी अनुसुइया आश्रम के दो-एक महात्मा वहाँ निवास करने लगे थे। उन दिनों वहाँ स्वामी भगवानानन्द जी विराजमान थे। मधवापुर में एक चाईं परिवार रहता था। लोगों को ठगना उनका धंधा था। उनके पास अकूत सम्पत्ति थी। उस चाईं के आठ लड़के थे। आठो लड़के अलग-अलग बग्गी में स्कूल जाते थे। उन दिनों या तो मनकापुर स्टेट का राजकुमार बग्गी में आता था या उस चाईं के लड़के। आठो लड़के बड़े हुए तो उसके वृद्ध पिता ने सम्पत्ति का बँटवारा कर दिया। सूप में अशरफी (सोने के सिक्के) भरकर आठ जगह ढेरी लगायी गयी। इसी प्रकार स्वर्णाभूषण रखे गये। चाँदी की तो गणना ही न थी।

उस वृद्ध के मरने के दस-पन्द्रह साल के भीतर ही पता नहीं क्या हो गया? सारा धन समाप्त हो गया। न चोरी हुई न डाका पड़ा। एक को छोड़कर सभी लड़के भी काल कवलित हो गये। एक लड़का जीवित था तो वह भी पागल! वह कभी-कभी रात को दस बजे के आसपास आश्रम से थोड़ा दूर बाँस की एक कोठी में आकर बैठ जाता था। स्वामी जी कहते थे– ''क्यों रे बलई!'' आश्रमीय भक्तों से स्वामी जी कहते– ''भूखा-प्यासा आया होगा। उसके अड्डे पर जाकर देखो।'' उन दिनों हम भी मधवापुर आश्रम में थे। लोगों ने पास जाकर बुलाया तो न दण्ड न प्रणाम! उसने कहा– ''भतवा देत्यो!'' लोग थाली भरकर उसे भोजन कराते जबकि वह पहले अरबपति रह चुका था।

बहुत से लोगों को माता-पिता ने बहुत दिया परन्तु लड़के पाये कुछ नहीं। उस राजकन्या को निकाल दिया था, वह सबकुछ पा गयी। सीताजी को विश्व में सर्वोपरि सुलक्षणसम्पन्न, भगवान कोटि के युवराज को जनक ने सौंपा, अपने भाग्य की सराहना की लेकिन सीता दस दिन से अधिक गद्दी पर कभी भी नहीं बैठ पायी। चक्रवर्ती सम्राट की पटरानी जंगलों में नंगे पाँव घूमी। इसीलिए,

मत दीजो मावड़लीनो दोस करमाँरी रेखा न्यारी-न्यारी॥

माता मीरा का यह एक भजन है। वह स्वयं भी बड़ी-बड़ी परीक्षाओं से गुजरी थीं। अन्त में उन्होंने अपने भक्तों को उपदेश दिया कि अपने माता-पिता को कोई दोष न दे। कर्मों के अनुसार सबके भाग्य की रेखा अलग-अलग है। पूरा भजन इस प्रकार है–

मत दीजो मावड़लीनो दोस, करमाँरी रेखा न्यारी न्यारी।

एक मायड़ रे बेटा चार, चाराणीं करणीं न्यारी न्यारी।
पहलो राजा जी रो दरबार, दूजोरो हीराँ पारखी।
भाई रे! तीजो बाजारा री हाट, चौथोरो फेरे पूनिया।
भाई रे! मत दीजो मावड़लीनो दोस करमाँरी रेखा न्यारी न्यारी॥

एक गाय रे बछड़ा चार, चाराणीं करनी न्यारी न्यारी।
पहलो सूरज जी रो साँड़, दूजो रो शिवरो नादियो।
भाई रे! तीजो घाणीवालो बैल, चौथो वणजारो लादियो।
भाई रे! मत दीजो मावड़लीनो दोस करमाँरी रेखा न्यारी न्यारी॥

एक बेल रे तुम्बा चार, चाराणीं करनी न्यारी-न्यारी।
पहलो सतगुर जी रे हाथ, दूजो जल जमना भरयो।
भाई रे! तीजो तम्बूरा री बीन, चौथोरो भिक्षा मागियो।
भाई रे! मत दीजो मावड़लीनो दोस करमाँरी रेखा न्यारी न्यारी॥

एक माटीरा बर्तन चार, चाराणीं करनी न्यारी-न्यारी।
पहले में दहीड़ो बिलोय, दूजोरी शिवरी झारियाँ।
भाई रे! तीजो पनिहारारी सीस, चौथोड़ो मृदम वाड़ियो।
भाई रे! मत दीजो मावड़लीनो दोस करमाँरी रेखा न्यारी न्यारी॥

मीरा कहती हैं कि अपने सीमित उपलब्धियों के लिए माँ को दोष कदापि न दें। सबके कर्म अलग इसलिए सबके भाग्य की रेखा भी अलग-अलग है। एक ही माँ के चार लड़के, लेकिन चारों की भाग्यरेखा अलग-अलग है। **'पहलो राजा जी रे दरबार'**– उन चार में से एक लड़का राजा के दरबार में सेनापति, मंत्रीपद का उपभोग कर रहा है। **'दूजो रो हीराँ पारखी'**– दूसरे लड़के का उससे हल्का भाग्य; हीरे को परखनेवाला जौहरी बन गया। तीसरे लड़के का इससे हल्का भाग्य **'तीजो बाजारा री हाट'**– कहीं कपड़ा लगा दिया, कहीं टैबलेट गिनने लगा, कहीं आइसक्रीम बेचने लगा– दिनभर अपनी रोजी-रोटी में व्यस्त और **'चौथेरो फेरे पूनिया'**– मशीनों के आविष्कार से पूर्व चरखे से सूत कातते थे। रुई के छोटे-छोटे फाहे बनाये जाते थे जिसे पूनी कहते थे। सूत कातने में एक पूनी समाप्त होते ही चट दूसरी पूनी चरखे के तार में लगा देते थे। इस प्रकार उसी माँ का चौथा लड़का दिन भर पूनी ही फेर रहा है। आज की दुनिया में जैसे कोई कालीन

का टपका ही काट रहा है। माँ-बाप एक और परिणाम चार! इसलिए '**मत दीजो मावड़लीनो दोस**'– माँ को दोष न दें। सबके अपने-अपने कर्म हैं।

मीरा ने दूसरा उदाहरण पशु-जगत् से लिया। एक गाय के चार बछड़े। उद्गम एक, लेकिन चारों की भाग्य-रेखा अलग-अलग देखी गयी। '**पहलो सूरज जी रो साँड़**'– गुजरात, राजस्थान इत्यादि क्षेत्रों में साँड़ दागते हैं तो भगवान सूर्य को अर्पित करते हैं। सूर्य के रथ के पहिये जैसा उसके पुट्ठे पर दागते हैं। अब वह सूर्य जी का हो गया। उसे कोई छड़ी नहीं मार सकता। वह आयुपर्यन्त निर्द्वन्द्व घूमा करता है। यह पहली श्रेणी के बैल का भाग्य है। उसी गाय का दूसरा बछड़ा '**शिवरो नादिया**'– शिवजी का नन्दी बना दिया गया। उसे दिखाकर भिक्षा माँगते हैं। काशी में शंकरजी के नाम पर बछड़े छोड़े जाते हैं। वह भी काशी की गलियों में पत्तल चाट रहे हैं, कहीं डंडा भी खा रहे हैं, काम कुछ नहीं, आराम से जीवनयापन हो जाता है। '**भाई रे! तीजो घाणीवालो बैल**'– उसी गाय के एक बछड़े की तकदीर तीसरी श्रेणी की हो गयी! वह कोल्हू का बैल हो गया। कबीर कोल्हू के बैल का उदाहरण देते हैं–

आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस।
ज्यों कोल्हू के बैल को, घर ही कोस पचास॥

कबीर कहते हैं– यदि मन से आशा-तृष्णा समाप्त नहीं हुई है तो भजन के लिए आसन लगाने से ही क्या लाभ होगा? क्योंकि जिस मन को बैठना चाहिए वह तो चक्कर मार रहा है। जैसे कोल्हू का बैल चलता तो एक सीमित स्थान में है किन्तु वह उसी घर में सैकड़ों किलोमीटर का चक्कर लगा लेता है। निरन्तर चलना बैल के भाग्य की तीसरी श्रेणी है और उससे भी गया-बीता चौथी श्रेणी का भाग्य उस बैल का है जिसे '**बणजारो लादियो**'– जो बनजारों के हाथ लग गया। बनजारा उस व्यापारी को कहते थे जो दूर-दराज के नगरों तक जीवनोपयोगी वस्तुओं को बैलों पर लादकर क्रय-विक्रय किया

करता था। नमक इत्यादि लादकर अटक से कटक तक, काबुल से कन्याकुमारी तक एक बार आने-जाने में ही बैल की आयु के दिन पूरे हो जाते थे। आजीवन एक भरपूर बोझ उसकी पीठ पर रहा जबकि माँ एक, परिवार एक किन्तु चारों के भाग्य अलग-अलग! अगली पंक्ति में मीरा वनस्पति जगत् का उदाहरण लेती हैं कि वहाँ भी सबके भाग्य अलग-अलग हैं–

एक बेल रे तुम्बा चारि, चाराणीं करनी न्यारी न्यारी।

लौकी की एक बेल में चार तुम्बे लगते हैं लेकिन चारों की भाग्य-रेखा अलग-अलग दिशा में जा रही है। उनमें से '**पहलो सतगुरु जी रे हाथ**'– सर्वोपरि भाग्य उस तुम्बे का निकला जो सद्गुरु जी के हाथ में कमण्डल के रूप में सेवा कर रहा है। '**दूजो जल जमना भरयो**'– दूसरी श्रेणी का भाग्य उस तुम्बे का है जिसमें गंगा-यमुना का पवित्र जल भरकर किसी ने बड़े यत्न से घर के एक कोने में रख दिया है। पर्वों पर, मांगलिक अवसरों पर या किसी के अन्तिम समय में ही उस तुम्बे से थोड़ा-सा जल लेकर उसमें अन्य जल मिलाकर आचमन कर लेते हैं। पवित्र जल का संसर्ग तुम्बे के दूसरे श्रेणी का भाग्य है। '**भाई रे! तीजो तम्बूरा री बीन**'– तीसरी श्रेणी का भाग्य उस तुम्बे का है जिसे वीणा बजाने के लिए तम्बूरे का रूप दे दिया गया है– ध्वनि-प्रदूषण–यंत्र बना दिया गया– सिर पर हमेशा टिन्न-टिन्न! और उससे भी निचले स्तर का भाग्य उस तुम्बे का निकला– '**चौथोड़ो भिक्षा मागियो**'– उस चौथे तुम्बे का उपयोग भिक्षा माँगने में किया जा रहा है। उस तुम्बे का सिर आधा काटकर 'भाई! रामचन्दरजी सहाय करें! भिक्षुक को भी दो मुट्ठी मिले...' कह रहे हैं। उद्गम-स्थली एक किन्तु चौथा तुम्बा भिक्षा माँग रहा है।

अन्त में मीरा ने जड़ कहे जानेवाले पदार्थों को इंगित किया कि भले ही मानवेतर योनियाँ कर्मानुसार भोग भोगने के लिए हैं, नया कर्म संस्कार वे सृजित नहीं कर पाते, फिर भी भोग की निम्न-उच्च श्रेणियाँ वहाँ भी कर्मानुसार मिलती हैं। उदाहरण के लिए–

एक माटीरा बर्तन चार, चाराणीं करनी न्यारी न्यारी।।

कुम्हार एक ही स्थान से मिट्टी लेता है, उसे सानता है, लोंदी तैयार करता है। वह एक ही चाक पर समान परिश्रम से चार पात्र तैयार करता है, पकाता है लेकिन चारों का भाग्य अलग-अलग है। उनमें सर्वोपरि भाग्य **'पहलो में दहीड़ो विलोय'**– दही मथनेवाले पात्र का है– रात-दिन दूध-दही, मलाई-मक्खन, मठा और घी से लबालब! सारा जीवन स्नेहसिक्त बीतता है। दूसरे श्रेणी का भाग्य उस मटके का है– **'दूजोड़ो शिव री झारिया'**– घड़े में नीचे छिद्र कर दिया, झारी बनाकर शंकरजी के ऊपर लटका दिया। अब उससे टप-टप-टप-टप बूँदें शिवजी का अभिषेक कर रही हैं। यह तो है कि उसे छेदा गया, छोटा-सा ऑपरेशन हुआ, फिर भी उसका भाग्य संतोषजनक है क्योंकि भगवान के समीप है और उससे भी हलका भाग्य– **'तीजो पणिहारां रे शीश'**– तीसरी श्रेणी का भाग्य उस घड़े का है जो पनिहारियों के सिर पर है। आजकल तो हैण्डपम्प, सबमर्सिबल पम्प लग गये, पाइप लाइन बिछ गयी। एक जमाना था कि भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में माताएँ सिर के ऊपर घड़े पर घड़ा, घड़े पर घड़ा, सबके ऊपर छोटी-सी लुटिया रखकर पनघट पर जाती थीं और वहाँ से जल भरकर वापस आती थीं। दिन जल भरते बीतता था। और सबसे हतभाग्य वह घड़ा था– **'चौथोड़ो मृदम वाड़ियो'**– शौच के लिए जल ले जानेवाला पात्र, डोल-डाल जाने का लोटा! जैसे आजकल हैण्डपम्प के पास दो-चार बोतल-डिब्बे पड़े रहते हैं। चारों पात्रों में प्रयुक्त मिट्टी एक, निर्माता एक, उपकरण एक, एक आँच पर चारों एक साथ तैयार हुए किन्तु एक का भाग्य उसे कहाँ ले गया और चौथा किस उपयोग में लाया गया। इसलिए **'मत दीजो मावड़लीनो दोस, करमाँरी रेखा न्यारी न्यारी।'**– माता-पिता को दोष मत दो कि माँ ने उस बच्चे के प्रति पक्षपात किया या पिताजी ने हमारे साथ न्याय नहीं किया। आपका न्याय तो आपके पीछे-पीछे आपका भाग्य करता चला आ रहा है।

भाग्य की प्रबलता के अनेकानेक कथानकों से भारतीय साहित्य भरा पड़ा है। हिमाचल नरेश के यहाँ बड़ी मनौती के पश्चात् एक कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम पार्वती रखा गया। नरेश के यहाँ देवर्षि नारद का पदार्पण हुआ। ऋषि ने कन्या की भाग्य-रेखा का अवलोकन किया। वह बोले– "ओह! अत्यन्त सुलक्षणा! माता-पिता इससे यश पायेंगे। यह अम्बिका, उमा, भवानी नामों से जगत् में पूज्य होगी किन्तु इसकी हस्तरेखा में एक छोटा-सा दोष है।" राजा ने पूछा– "वह क्या?" नारदजी ने बताया–

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

(रामचरितमानस, 1/67)

इसके हाथ की रेखा ही ऐसी है कि इसका पति योगी होगा, अमंगल वेषधारी होगा, नग्न होगा, जटाधारी होगा। इतना ही नहीं–

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना॥

(रामचरितमानस, 1/66/8)

उसमें कोई गुण नहीं होगा, उसके माता-पिता का भी ठिकाना नहीं होगा। अब माता मैना तो भोंकार छोड़कर लगी रोने! राजा भी उदास! छटपटाकर रह गये। उन्होंने पूछा– "महाराज! इन दोषों के निराकरण का कोई उपाय भी है?" नारदजी ने कहा– "जो लक्षण हमने बताये, वह तो कहीं जाने वाले नहीं हैं। हाँ, एक रास्ता है। जो भी लक्षण हमने बताये, वह सब-के-सब भगवान शिव में भी पाये जाते हैं। यदि भोलेनाथ शिव इसका वरण कर लें तो दोष भी गुण कहलायेंगे किन्तु उन्हें प्राप्त करना कठिन है। हाँ, एक उपाय है–

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

(रामचरितमानस, 1/69/5)

यदि तुम्हारी कन्या तपस्या करे। पार्वती को स्वप्न भी आया कि जा, कर तपस्या! वह तपस्या में लग गयी। तपस्या फलीभूत हुई। बारात भी चल

पड़ी। भगवान विष्णु ने कहा– हमलोग शंकरजी के बारात के लायक ही नहीं हैं। इसलिए सबलोग शंकरजी के समाज से पीछे अपना-अपना समाज अलग-अलग कर चलें।

अब आगे-आगे शंकर जी नन्दी पर सवार पीछे भक्तों की ओर मुख करके बैठे हैं ताकि भक्तलोग दर्शन पाते रहें। प्रभु का दर्शन करने के पश्चात् उनके गणों का क्या कहना? उनकी खुशी का वारापार नहीं था। कोई शृंगी बजा रहा था, कोई नाल बजा रहा था तो कोई पेट ही थपथपा रहा था। औरतों ने ऐसी बारात देखा तो घबड़ा गयीं। माता मैना के हाथ से आरती की थाल छूट गयी, वह बिटिया को लेकर एक कमरे में घुस गयीं और कहा– हम मर जायेंगे, हमारी बिटिया भले ही कुँवारी रह जाय, ऐसे वर से हम इसका विवाह नहीं करेंगे। क्यों? माता मैना कारण बताती हैं–

गौरा के शिव से सँघतिया, कैसे सफरी?

शिव के साथ मेरी गौरी का निर्वाह कैसे होगा? समस्या क्या है? तो–

बर बौड़म बौराह मेरी गिरिजा सरल सुकुमारी।
मधुर मधुर मिष्ठान्न खियवली हम सोने की थाली।
ऊ चबालेनि बेल पतिया, कैसे सफरी?

वर पागल ही नहीं, पागलों का सरदार है, सैकड़ों पागल इनके पीछे लगे हैं। हम अपनी गौरी को मिष्ठान्न खिलाते हैं जबकि यह बेल की पत्ती चबाते हैं, धतूर खाते हैं। भला इनके संग गौरा का निर्वाह कैसे होगा?

अपने तो अलमस्त बनल, जग में कहवैहैं भोला।
गिरिजा से पिसवइहैं सखियों भाँग धतूरा गोला।
दिनवा रतिया ई अफतिया कैसे सफरी?

प्रायः स्त्रियाँ सुबह-शाम भोजन बनाकर बर्तन साफ कर गृहकार्यों से निश्चिन्त हो जाती हैं लेकिन भोलेनाथ के यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है। सुबह-शाम भोजन नहीं चाहिए। चौबीसों घण्टे भाँग चाहिए। दिन-रात घोंटे रहो,

लाये रहो। रात-दिन की इस साँसत में निर्वाह कैसे होगा? कुछ धन-दौलत होता तो उससे भी सन्तोष किया जा सकता था किन्तु इनके यहाँ तो वह भी नहीं–

धन के नाम पर टुटही मड़ई बुढ़वा बैल दिखाला।
आभूषण के नाम पर डमरू त्रिशूल केहरि छाला।
अइले गइले की इज्जतिया कैसे सफरी?

धन के नाम पर एक टूटी-सी झोपड़ी, सवारी के लिए एक बूढ़ा बैल जो एक हराँई चलने लायक भी नहीं है। यह है राजकुमारी! राजवंश की एक मर्यादा होती है। दरवाजे से कोई भूखा निकल जाय, यह असम्भव है। आने-जाने वाले का स्वागत-सत्कार, दरवाजे की मान-मर्यादा यह कैसे निभाएगी? अंत में माता मैना निर्णय देती हैं–

जल में बूड़ब जलब आग में जग में अपजस लैबै।
मंगल मूरति सुता ऐसन बउरहवा के न दैबै।
मनबै न काहू के बतिया कैसे सफरी?

हम आग में कूद जायेंगे या जल में डूबकर प्राण दे देंगे, संसार का सारा अपयश हमें स्वीकार है लेकिन इस पगलंठ को अपनी मंगलमूर्ति सुकुमारी कन्या नहीं देंगे, कभी नहीं देंगे। माँ का हृदय व्यथित था, पार्वती ने ही समझाया–

तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका।
मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका।। *(मानस, 1/96/8)*

माँ! क्या भाग्य के अंक आप मिटा सकती हो? व्यर्थ कलंक क्यों लेती हो? यदि हमारे भाग्य में यही है तो आप क्या करेंगे और हम भी क्या कर सकते हैं! करनी का भार तो किसी-न-किसी को सहन करना ही पड़ेगा। ब्याह हो गया।

उस युग-जमाने से आज तक करोड़ों राजा-महाराजा आये और गये, किसी के इतिहास का पता नहीं है, किंवदन्तियों में भी किसी की चर्चा तक

नहीं है लेकिन आज भी जहाँ पार्वती का नाम आता है हिमवन्त और मैना की बरबस याद आ जाती है। यही है– **'एहि तें जसु पैइहिं पितु माता।'**

भाग्य की प्रबल पक्षधर मैना की बिटिया भी दो-एक बार भाग्य से लड़ने को उद्यत हो गयी। देवर्षि नारद की गणना खुराफाती ऋषियों में होती है। एक बार उनका पदार्पण कैलाश पर हुआ। भोलेनाथ उस समय भजन-समाधि में थे। नारद जी ने पार्वती से कहा– "आपने देखा, आकाश में जो विमान जा रहा है उसमें इन्द्राणी शची देवी विराजमान हैं, सम्पूर्ण शरीर हीरे-जवाहरात से जटित, स्वर्णाभूषणों से लप-झप कर रहा है। उधर देखें, लक्ष्मी जी भी जा रही हैं। जिधर से गुजरती हैं, सोना ही सोना झड़ता चला जा रहा है। देवियों की उस सभा में आप बैठने योग्य नहीं हैं!"

पार्वती की भृकुटि पर बल पड़ गये। वह बोलीं– "क्यों? मैं उन सबके बीच बैठने लायक क्यों नहीं हूँ? भगवान शिव सर्वोपरि देव महादेव हैं। मैं उनकी अर्द्धाङ्गिनी हूँ। वह अर्द्धनारीश्वर कहलाते हैं। मैं तो आधा शिव ही हूँ।" नारद ने कहा– "माताजी! बातें आप कितनी ही क्यों न बनायें, लेकिन कहाँ उनकी शान और कहाँ आपका यह भीखमंगा स्वरूप! आभूषणों के बिना स्त्री की गरिमा दो कौड़ी की होती है।– ऐसा ही मैंने सुना है, माते! नाराज न होइएगा।" प्रणाम करके नारद जी चलते बने।

नारद की बात पार्वती की समझ में आ गयी। अपनी दयनीय स्थिति पर उन्हें किञ्चित् रोष आ गया। उन्होंने मुँह फुला लिया। राजा-महाराजाओं के यहाँ तो कोपभवन होता है, पार्वती के मायके में रहा भी, यहाँ वह व्यवस्था कहाँ? वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गयीं, बात ही नहीं कर रही थीं। शंकर जी ने पूछा– "क्या हो गया?" पार्वती ने कहा– "हम आभूषण पहनेंगे।" शंकर जी ने कहा– "भजन छोड़कर अब आभूषण पहनने का मन हो गया; क्या बात है?" पार्वती ने कहा– "देखें, सभी देवताओं की स्त्रियों ने आभूषण पहन रखे हैं, हमें भी चाहिए।" शंकर जी ने बहुत समझाया किन्तु कोई तर्क पार्वती के गले के नीचे नहीं उतरा।

अंततोगत्वा शंकर जी ने अपनी मूँछ का एक बाल उखाड़ा और बोले– ''इसे कुबेर को दे देना और इसके बदले में जेवर पहन लेना।'' कुबेर ने देखा कि माताजी आ रही हैं। वह उठकर खड़ा हो गया, दौड़कर चरणों में जा गिरा और बोला– ''माताजी! मुझसे कोई भूल हो गयी क्या? आपने यहाँ आने का कष्ट कैसे किया? हमें ही बुलवा लिया होता।

बड़े संकोच से पार्वती बोलीं– ''भैया कुबेर! हम कुछ आवश्यक कार्य से आये हैं। यह बाल ले लो और इसके बदले थोड़ा जेवर दे दो।'' पार्वती सोच रही थीं कि इसके बदले बहुत होगा तो नाक की कील मिल जायेगी या कान का कोई छोटा आभूषण मिल जायेगा। इस बाल के बदले और मिल ही क्या सकता है? बड़े संकोच से उन्होंने वह बाल कुबेर की तराजू पर रख दिया। कुबेर लगा अपना खजाना चढ़ाने! पूरा खजाना आ गया, बाल फिर भी भारी! कुबेर स्वयं भी कूदकर तुला पर बैठ गया, तब भी बाल भारी पड़ा। कुबेर ने कहा– ''माता जी! हमारा सारा राज्य ले लें। अलकापुरी का सारा ऐश्वर्य हमने रख दिया किन्तु इस बाल का मूल्य हम नहीं दे सकेंगे। आप जितना चाहें उतना जेवर योंही पहन लें, भोलेनाथ के क्रोध से हमें बचायें।''

पार्वती बोलीं– ''अच्छा, हमारा बाल लाओ।'' उसे लेकर वह वापस कैलाश चली आयीं। भोलेनाथ ने पूछा– ''आभूषण पहन आयी?'' पार्वती ने कहा– ''हाँ, पहन आयी। अब वास्तविक जेवर हमें मिल गया, मेरा भ्रम दूर हो गया।'' इसके पश्चात् पार्वती ने कभी जेवर पहनने की इच्छा ही नहीं की।

वस्तुतः आभूषण है क्या? जैसे लोहा वैसे ही पत्थर, रत्न और सोना पृथ्वी से निकले खनिज मात्र हैं। कुछ लोगों को हीरे की चमक अच्छी लग रही है तो कुछ को सुवर्ण! दुर्लभता से इनका मूल्य घटता-बढ़ता रहता है। इनका जीविकासम्बन्धी उपयोग अवश्य है। नीतिवचन में है–

श्रोतः श्रुतेनैव न तु कुण्डलेन,
दानेन पाणिः न तु कंकणेन।
विभाति कायः करुणापराणाम्,
परोपकारैर्नतु चन्दनेन॥

अर्थात् कान की शोभा श्रुतियों का श्रवण करने में है, कुण्डल पहनने में नहीं। हाथ की शोभा दान से है, कंकण से नहीं। इसी प्रकार दयालु पुरुषों के शरीर की शोभा परोपकार से है, चन्दन के लेप से नहीं।

सारांशतः मनुष्य का श्रृंगार चरित्र से है और सर्वोपरि चरित्र है–

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥

(रामचरितमानस, 7/95/2-3)

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 18)

क्या नयना झमकावै

क्या नयना झमकावै, ठगिनिया क्या नैना झमकावै।
कबिरा तेरे हाथ न आवै, ठगिनिया क्या नैना झमकावै॥
रूपा पहिरि के रूप दिखावै, सोना पहिरि चमकावै।
गले डारि तुलसी की माला, तीन लोक भरमावै॥
ठगिनिया क्या..........॥

कद्दू काटि मृदंग बनाया, निब्बू काटि मंजीरा।
पाँच तुरैया मंगल गावैं, नाचै बालम खीरा॥
ठगिनिया क्या..........॥

उल्टा चिल्ली देत पैंतरा, कौआ तीर चलावे।
पेड़ चढ़े मछली फल खावे, बकुला भोग लगावे॥
ठगिनिया क्या..........॥

भैंस पद्मनी चूहा आशिक, मेढक ताल लगावे।
छतरी चढ़ि के मकरी नाचै, झींगुर बन्द लगावे॥
ठगिनिया क्या..........॥

चोला पहिर के गदहा नाचै, ऊँट विसन पद गावै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु शरण बचावै॥
ठगिनिया क्या..........॥

आध्यात्मिक महापुरुषों ने सांसारिक वैभव और उसके प्रति मानव मन की आसक्ति को माया की संज्ञा दी है। सांसारिक रिश्ते-नाते और यहाँ की समृद्धि क्षणिक है, नश्वर है, छलावा है। इसलिए सन्त कबीर माया को महाठगिनी कहते हैं–

माया महाठगिनि हम जानी।
केशव के कमला होई बैठी, शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति होइ बैठी, तीरथ में भइ पानी।।
माया.......।।

माया ने देखा कि लोगों की मन्दिरों में श्रद्धा है तो वह वहाँ ढोंग बनकर बैठ गयी। लोगों की मान्यता है कि गुरु से कल्याण है तो गुरुओं की कतार लग गयी। माया सब जगह हाजिर है और यह केवल धोखा देकर भोली-भाली आत्माओं को, श्रद्धालुओं को अपने चक्कर में घुमा देती है, चौरासी लाख योनियों का चक्कर लगवा देती है। एक स्थान पर संत कबीर कहते हैं–

हरि ठग ठगत ठगौरी लाई।
हरि के वियोग कैसे जियहु रे भाई।।

हरि सबसे बड़े ठग! जहाँ कोई भजन-चिन्तन में आगे बढ़ा, वह अपने भक्त की परीक्षा के लिए ठगौरी (भुलावा, ठग विद्या, ठगने की कला) को आदेश देते हैं। पता लगाते हैं यह कितने पानी में है। वैसे माया का स्वयं में कोई अस्तित्व, स्वतन्त्र सत्ता है ही नहीं।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ।।
पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी।।
(रामचरितमानस, 7/115/3-4)

भगवान को भक्ति प्यारी है। माया तो नाचनेवाली नर्तकी मात्र है लेकिन हैं दोनों भगवान की ही! माया ठगने के लिए ही है लेकिन ठगती है

भगवान के संकेत पर! अतः साधक को इससे घबड़ाना नहीं चाहिए कि लोभ आया या मोह, राग आया या द्वेष; संग-दोष आया या सुविधा आई। यह तो भगवान का ही भेजा हुआ यन्त्र है, इसे अन्यथा न लें तो इससे शीघ्र ही पार पा जायेंगे। जहाँ इसे पराया, विजातीय समझेंगे, तहाँ तुरन्त द्वेष खड़ा हो जायेगा।

इस माया को लेकर सन्त कबीर के अनेक भजन हैं। एक पद में वह कहते हैं–

रमैया तोर दुलहिन लूटा बजार।

हे भगवन्! आपकी माया ने बना-बनाया, सजा-सजाया बाजार लूट लिया। किसको-किसको लूटा? कबीर बताते हैं–

विष्णु को लूटा महादेव लूटा, ब्रह्मा को लूटा लोटार-लोटार।
रमैया.......॥

सुरपुर लूटा नागपुर लूटा, तीन लोक मचा हाहाकार।
रमैया.......॥

श्रृंगी की भृंगी करि डारी, पाराशर के उदर विदार।
रमैया.......॥

कनफूका चिदकाशी लूटी, लूटल योगेश्वर करत विचार।
रमैया.......॥

हम तो बचि गये साहब कृपा ते, सबद डोर गहि उतरे पार।
रमैया.......॥

कहत कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगिनी से रहो हुशियार।
रमैया.......॥

शब्द की डोर पकड़ कर हम पार हो गये। महापुरुष वाणी से तभी तक उपदेश देते हैं जब तक वह हृदय से जागृत नहीं हो जाते, आत्मा से अभिन्न

होकर खड़े नहीं हो जाते। जहाँ वह आत्मा से उपदेश देने लगे तो वाणी का उपदेश मात्र दस-बीस प्रतिशत तक रह जाता है। शेष सभी उपदेश वह हृदय से देते जायेंगे। साधक उन्हें समझता जायेगा और आगे बढ़ता जायेगा। इसलिए हृदय में जो शब्द मिलता है, उसकी डोरी पकड़ो। शब्द में लव लगाओ, सुरत की डोरी शब्द में जोड़ दो, पार हो जाओगे।

भगवत्पथ ऐसा नहीं है कि– ऐसा करो, ध्यान लग जायेगा; ऐसा कर लो तो समाधि लग जायेगी। ऐसा कुछ भी नहीं है; क्योंकि **'तुलसी मन बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजे।'**– जब प्रेरक के रूप में स्वयं प्रभु खड़े हो जायँ, रोकथाम करें, साधक की सार-सम्हाल करें तभी यह अयुक्त मन वश में होता है अन्यथा साधक पता ही नहीं पाता कि कब माया काम कर रही है और कब वह साधना के पथ पर है। साधक इसे अलग ही नहीं कर पायेगा। मन का सोचा तो मात्र विकल्प होता है, बुद्धि का निर्णय एक तर्क मात्र है जबकि भगवान अतर्क्य हैं। वह मन-बुद्धि के द्वारा नहीं पहचाना जा सकता। इसलिए जिस सत्ता की हमें चाह है वह प्रभु आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जायँ, हम जिस सतह पर हैं वहाँ वह निकल आयें और अन्तःकरण से मार्गदर्शन करने लगें। फिर साधक के जीवन में कोई सन्देह नहीं है। केवल आज्ञापालन करें, शब्द से सुरत की डोर जोड़ लें– यही है **'शब्द डोर गहि उतरे पार। रमैया तोर दुलहिन लूटा बजार।'**

भगवत्पथ में माता-पिता की कुलीनता अथवा हीनता का कोई योगदान नहीं है। वेदवाक्यों से मंत्रोच्चारपूर्वक ब्याह से जन्म हुआ या स्वच्छन्द विवाह से– इसकी भी कोई गणना नहीं है। यह तो सामाजिक व्यवस्था की मर्यादाएँ हैं, गौरवगाथाएँ हैं। शादी-विवाह के रीति-रिवाज हमारी पावन संस्कृति के अंग हैं। इनका पालन होना चाहिए किन्तु ईश्वर-पथ में यह संस्कृति नहीं लगती।

ऐसा ही कथानक शृंगी ऋषि का है जिनका उल्लेख महाभारत के वन पर्व और वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में मिलता है। विभाण्डक ऋषि

घनघोर जंगल में तपस्या कर रहे थे। उनकी कुटिया के समीप की पगडंडी पर मृगों के झुण्ड के मध्य उन्हें एक नवजात शिशु मिला। ऋषि उसे ले आये, उसका पालन-पोषण करने लगे। शरीर-सौष्ठव के साथ ही बालक अत्यन्त प्रखर मेधा का था। ऋषि उसे जितना अध्ययन कराते, सब-का-सब उसे कण्ठस्थ हो जाता था। उसकी प्रगति से ऋषि बहुत सन्तुष्ट थे। उनका लक्ष्य था कि इसे मैं भगवान बनाकर दम लूँगा। वह उसकी साधना के विकास में लगे रहे। उस बालक के सिर पर एक जगह श्रृंग-जैसा उभार होने से ऋषि प्रेम से उसे श्रृंगी कहते थे।

श्रृंगी युवा हो चले थे। उस घोर जंगल में अपने अभिभावक पिता या यदा-कदा वहाँ पधारनेवाले ऋषियों के अतिरिक्त अन्य किसी को उन्होंने देखा तक न था। स्त्री जाति से उनका परिचय ही नहीं था। अखण्ड ब्रह्मचर्य से उनका सुगठित शरीर उद्भासित था। महान् तेजस्वी और क्रोधी ऋषि विभाण्डक सदैव उनकी रखवाली में रहते थे कि कोई उन्हें छल न ले।

श्रृंगी ऋषि की साधना लगभग पूर्ण हो चली थी। परमात्मा की प्राप्ति होना मात्र शेष था। उनकी परीक्षा की घड़ी आने लगी। विभाण्डक मुनि समझते थे कि अब खतरा मँड़रा रहा है। वह श्रृंगी को बार-बार सचेत करते थे कि अपने संयम-साधना के बाहर पाँव न रखना, न सुनना, न देखना।

उस समय अयोध्या नरेश दशरथ जी के मित्र, अंगदेश के राजा लोमपाद के यहाँ अकाल पड़ा हुआ था। ज्योतिषाचार्यों ने अकाल निवारण का उपाय बताया कि वन में श्रृंगी ऋषि रहते हैं। यदि उनका चरण आपके राज्य में पड़ जाय तो वर्षा होगी। राजा ने ऋषि को लाने के अनेक प्रयत्न किए किन्तु विभाण्डक ऋषि अनुमति ही नहीं देते थे।

मंत्रियों ने मुनि की अनुपस्थिति में उन्हें लाने की योजना बनायी। मुनि के श्राप के भय से कोई वहाँ जाने को तैयार ही न होता था। अन्ततः एक वेश्या ने यह चुनौती स्वीकार किया। दो बड़ी नावों में कुटी बनाकर, बाग लगाकर, संत का वेष बनाकर, दाढ़ी जटा लटकाकर अपने साथ कुछेक नये

उम्र की वाराङ्गनाओं को लेकर, उन सबको कमण्डलु पकड़ाकर, हाथ में माला देकर साथ में ले लिया।

दोपहर के समय जब विभाण्डक मुनि कंदमूल फल लेने जंगल में चले गये, उस नृत्यांगना ने साथ आयी हुई हाव-भाव में निपुण एक नवेली को साधुवेश में शृंगी ऋषि के पास भेजा। उसे ब्रह्मचारी बटु समझकर शृंगी स्वागत हेतु उठकर खड़े हो गये– भगवन्! ब्रह्मचारिन्! आपका किधर से आगमन हो रहा है? यह अर्घ्य, पाद्य स्वीकार करें; विराजें! उन्होंने चटाई बिछा दिया। नैवेद्य में जंगली फल रख दिया। उस नृत्यांगना ने उसे मुख में डाला तो मुख बिचका दिया। यह कैसा फल है? हमारे यहाँ तो बहुत मधुर फल होते हैं। देखते हैं, हमारे कमण्डल में होगा! उसने शृंगी ऋषि को एक रसगुल्ला कमण्डल से निकालकर पकड़ा दिया। जहाँ शृंगी ने उसे मुख में डाला, ऊपर का ऊपर नीचे का नीचे ताकते ही रह गये। वह बोले– "अरे! इतना मधुर फल!" अब तक उन्होंने कभी मिष्ठान्न चखा ही न था। जंगल में महापुरुषों की इच्छाएँ नहीं होतीं। बाल्यकाल से जैसा खान-पान मिलता है वही वृत्ति बन जाती है। उन्होंने आश्चर्य से पूछा, "भगवन्! ये फल हैं?" नृत्याङ्गना ने कहा, "हाँ, हमारे यहाँ फलते हैं।" वह समझ गयी कि यह बहुत भोले-भाले हैं। उनसे कुछ बातचीत किया और मुनि के आने से पहले ही नाव पर चली गयी। बगीचा जैसी लगनेवाली नाव नदी के दूसरे किनारे पर चली गयी।

सायंकाल गुरुदेव विभाण्डक मुनि अपनी कुटिया पर पधारे तो शृंगी की भाव-भङ्गिमा बदली-बदली सी लगी। उन्होंने पूछा– "तबीयत तो ठीक है? आज तुम्हारा चित्त कैसा उचटा-उचटा है? धूना व्यवस्थित नहीं है। आज कुटिया की सफाई भी नहीं हुई। तुम्हें हो क्या गया आज?" शृंगी ने कहा, "गुरु महाराज! क्षमा करें, अभी-अभी एक ब्रह्मचारी जी आये थे। उनका इतना सुन्दर रूप-स्वरूप था कि मन करता था उनको देखते ही रहें।" विभाण्डक मुनि ने पूछा, "कैसा रंग-रूप था?" शृंगी ने बताया, "सुवर्ण जैसा उनका शरीर, लम्बी किन्तु सुवासित जटायें, दाढ़ी अभी नहीं थी, सीना

थोड़ा ऊँचा, वाणी बहुत मधुर!'' मुनि ने कहा, ''मूर्ख! वह ताड़का, सूपनखा जैसी कोई राक्षसी रही होगी। वह ब्रह्मचारिणी का वेष बदलकर तुम्हें ठगने आयी थी। यदि वह फिर कभी आती भी है तो उससे बात मत करना बल्कि उसे सँड़से से मारकर भगा देना।''

दूसरे दिन विभाण्डक मुनि की अनुपस्थिति में वह नृत्याङ्गना पुनः आई। शृंगी उससे बोले ही नहीं, आज्ञाकारी सेवक ठहरा गुरु महाराज का! अब नृत्याङ्गना ने अपने वाक्चातुर्य का प्रयोग किया– ''भगवन्! आज आपको हो क्या गया? आप स्वस्थ तो हैं न? ओह! मैं समझ रहा हूँ आप सोचते हैं कि मैं पतित हो जाऊँगा। भला आप ऐसे तपोधन का माया क्या कर लेगी?''

शृंगी का मन भीतर से बोलने को व्यग्र था इसलिए वह बोले, ''हाँ, माया मेरा कुछ भी नहीं कर सकती। ऐसा है कि गुरु महाराज नाराज होते हैं। कल कुटिया की सफाई ठीक से जो नहीं हो पायी थी लेकिन आप चिन्ता न करें, आज मैं सब सँभाल लूँगा।'' इसी प्रकार दिनभर वार्तालाप चलता रहा। मुनि के आने का समय जानकर वह शीघ्रता से नाव पर निकल गयी। शृंगी ने कुटिया की दिनभर की व्यवस्था एक घण्टे में ही पूरा कर दिया।

गुरु महाराज थके-थके आये, आसन पर बैठ गये। उन्होंने कुटिया में साफ-सफाई देखा तो सोचा सब ठीक ही होगा। अभी कल ही तो समझाया था। अब रोज-रोज कौन माथापच्ची करे। उन्होंने आज की दिनचर्या के बारे में पूछा ही नहीं।

तीसरे दिन विभाण्डक मुनि के जाते ही वह नृत्याङ्गना आई और बोली– ''भगवन्! हमारे गुरुदेव पधारे हैं। यहाँ समीप में ही उनकी नाव लगी है।'' शृंगी ने कहा, ''आपके गुरुदेव! वह तो बड़े ही महान् होंगे।'' नृत्याङ्गना ने कहा– ''चलें, केवल एक किलोमीटर पर ही तो हैं।'' नाव पर नृत्याङ्गनाओं ने साधुवेश में शृंगी ऋषि का खूब स्वागत किया। स्वस्तिवाचन सभी सीखकर आई ही थीं और उनके महन्थ जी वह अधेड़ नृत्याङ्गना शान्त बैठी रह गयी।

श्रृंगी ऋषि नमन करने लगे तो उसने कहा– "उँ हूँ! आप जैसे तपोधन को प्रणाम करने की आवश्यकता नहीं है। एक ही स्वरूप हैं। भगवन्! आप विराजें। प्रसाद ग्रहण करें।" कभी यह मिष्ठान्न तो कभी कुछ दूसरा! नाव में छोटे-मोटे वृक्ष लगा रखे थे। उनकी डाल पर मिठाइयाँ-मेवे टाँग रखे थे। उन देवियों ने अनुरोध किया– भगवन्! इस फल को तोड़िए, देखिये इस फल का स्वाद कैसा है? नाव वेगवती गंगा की धारा में चलती रही। बहलाते-फुसलाते वह लोग श्रृंगी ऋषि को अंगदेश ले आये।

अंगदेश के राजा के साथ अपार भीड़ ने श्रृंगी ऋषि का स्वागत किया। ज्योंही श्रृंगी ऋषि ने नाव के नीचे पाँव रखा, सचमुच बादल घिर आये, पानी भी बरसा। राजा बहुत प्रसन्न थे। वह सोच रहे थे– मैंने पूरा खजाना खर्च कर दिया लेकिन जनता के लिए कुछ भी तो नहीं कर सकता, पानी नहीं बरसा सका। यह महापुरुष इतने महान कि इनका चरण पड़ते ही पानी बरस गया। मैं इनकी क्या सेवा करूँ? उनके पास एक कन्या शान्ता थी जो महाराज दशरथ ने उन्हें गोद दे दिया था। उसी को उन्होंने ऋषि के चरणों में गिरा दिया और कहा– "भगवन्! हमने इसे आपको अर्पण कर दिया।" ऋषि ने पूछा– "यह कौन संत हैं?" राजा ने कहा– "यह संत नहीं, चरण-सेविका है।" ऋषि ने पूछा– "सेविका क्या होती है?" राजा ने कहा– "अब यही आपको सबकुछ पढ़ा देगी।"

इस प्रकार '**श्रृंगी की भृंगी करि डारी**'– श्रृंगी ऋषि का बना-बनाया बाजार चौपट हो गया। श्रृंगी को केवल भगवत्प्राप्ति होना ही शेष था लेकिन माया एक चकमा देकर लूट ले गयी। माया के कई हिस्से हैं– काम-क्रोध-मद-मत्सर! लेकिन भगवत्पथ में सन्तों के समक्ष एक स्तर ऐसा भी आता है जहाँ माया कितना भी चक्कर क्यों न मारे, वह कुछ कर नहीं सकती।

पहले मीरा बिलखती थी, रोती थी, रात-दिन प्रार्थना कर रही थी। उधर राज-परिवार की ओर से भयंकर उपद्रव चल रहा था। एक दिन मीरा हृदय में भगवान का सम्बल पा गयी; तब मीरा बड़े उत्साह से खड़ी हो गयी। उसने राणा को स्पष्ट कर दिया–

राणाजी! मैं तो गिरधर रँगवा राती!

औरों के पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजत पाती।
हमरे पिया मोरे हिय में बसत हैं, नहिं कहुँ जाती न आती।

राणाजी! मैं तो गिरिधर के रंग में रंग गयी हूँ। सबके पिया परदेश जाते हैं, चिट्ठी-पत्री से सम्पर्क स्थापित करते हैं, लेकिन हमारे प्रियतम तो हमारे हृदय में निवास करते हैं, हमारी पल-पल की खबर रखते हैं। हमें उनसे निवेदन करने न कहीं जाना है न आना। अब तक आपने जो उपद्रव किया, क्षम्य था; किन्तु अब कुछ करने का दुस्साहस करते हैं तो चक्कर में पड़ जायेंगे। मैं तो क्षमा कर दूँगी, लेकिन भगवान ही आपको क्षमा नहीं करेंगे। अभी तक जो माया इतनी प्रचण्ड थी, उसी को मीरा ललकार कर खड़ी हो गयी।

यही दशा गोस्वामी तुलसीदास जी की भी थी। साधना के आरम्भ में वह भी देवी-देवता, तीर्थ, पेड़-पौधे सबसे प्रार्थना कर रहे थे। आँखों में आँसू और हृदय में ठाकुरजी को लटकाकर कुछ दिन वह भी घूमते रहे कि प्रभो! मेरे मनरूपी मछली को पकड़ने के लिए आप अपनी कृपा की डोरी बनाइए। चरणचिह्न अंकुश को वंशी का काँटा बनाकर उसमें प्रेम का चारा लगाकर अपने पास खींच लें। ऐसी कृपा करें कि मेरा मन दूसरा कोई संकल्प ही न करे। मैं विषयों से भागने की सोचता हूँ किन्तु काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर, आशा-तृष्णा-वासना और इच्छाओं के भूत हमारे पीछे-पीछे चले आते हैं। मैं पैरों से चलता हूँ, ये हमारे मस्तिष्क में सवार होकर चलते हैं और ज्यों-ही मैं एकान्त में जाकर भजन में बैठता हूँ तो ये सभी विकार अपनी-अपनी गठरी खोलकर पहले ही रख देते हैं। फिर वही संकल्प, फिर वही चिन्तन और विकारों का फिर वही क्रम आरम्भ हो जाता है। इसलिए प्रभो! मेरे मन को आप अपने चरणों में प्रेम के चारे से ऐसा चिपका दें कि यह फिर कभी विलग न हो। इस प्रकार तुलसी रात-दिन स्तुति कर रहे थे, विनय में ही उनका जीवन बीतता था किन्तु एक दिन वह भी ललकार कर खड़े हो गये-

मैं तोहिं अब जान्यो संसार।

बाँधि न सकहिं मोहिं हरि के बल, प्रगट कपट-आगार।

(विनय-पत्रिका, 188)

रे संसार! अब हमने तुझे भलीभाँति जान लिया है। अब तू मुझे बाँध नहीं सकता क्योंकि मुझे हरि का बल प्राप्त हुआ है। तू प्रत्यक्षतः कपट का घर है। दूसरे शब्दों में 'माया महाठगिनि'। ठगना और कपट करना एक ही है। इतना ही नहीं,

ज्यों कदलीतरु-मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार॥

केले का वृक्ष छीलने पर छिलके पर छिलका ही निकलता है, उसमें ठोस लकड़ी कहीं है ही नहीं। इसी प्रकार रे संसार! तू ऊपर से चिकना-चिकना दिखता भर है, तेरे भीतर कोई सारतत्त्व नहीं है, तू नश्वर है, मैंने तुझे जान लिया है! अब तू मुझे नहीं बाँध सकता, अब मुझे हरि का सम्बल प्राप्त हो गया है।

हरि का यही बल अंगद को प्राप्त हुआ था। रावण की सभा में अकेला अंगद! किन्तु उसके हृदय में जहाँ प्रभु की अनुभूति का सञ्चार हुआ, दृश्य दिखायी पड़ा तो,

समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा॥

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥

(रामचरितमानस, 7/33/8-9)

राम का प्रताप समझ में आते ही अंगद ने रावण की सभा में प्रण करके अपना पैर टिका दिया कि जो मेरे चरण को हिला भर देगा, राम लौट जायेंगे और मैं सीता को हार जाऊँगा! बहुत से राक्षसों ने अंगद के पैर को धरती से उठाने में एँड़ी से चोटी तक का जोर लगा दिया किन्तु अंगद का पैर टस से मस नहीं हुआ। राक्षसों की असफलता देखकर मेघनाद उठा। मेघनाद अपने समय का सर्वोपरि योद्धा था। उसके साथ ही,

कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरे न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ।।

(मानस, 7/34 क)

क्या यह किसी बन्दर की साधारण-सी टँगरी थी? नहीं, यह एक आध्यात्मिक रूपक है, यौगिक रहस्य है। अनुराग ही अंगद है। अनुरागपूरित चित्त से जब साधक लगता है और उसके हृदय में जब भगवान के चरण स्थायित्व ले लेते हैं फिर कामरूपी मेघनाद और काममयी सैकड़ों प्रवृत्तियाँ भी उसे विचलित नहीं कर पातीं क्योंकि उसे हरि का बल प्राप्त है। अब क्रोधरूपी कुम्भकरण, अहंकाररूपी अहिरावण, लोभरूपी नारांतक और मोहरूपी रावण भी उसे एक तिल भर हटा नहीं सकते। आज आपका मन भजन में नहीं लगता। उसका कारण है आपमें अनुराग की कमी; किन्तु सतत् अभ्यास से आपमें अनुराग की वह स्थिति आ जाय कि भगवान आपके हृदय में अपना बल प्रदान कर दें, अपना वरदहस्त रख दें, फिर सृष्टि में ऐसा कुछ नहीं है जो आपको विचलित कर सके। इसीलिए आरम्भ में दिन-रात प्रार्थना करनेवाले तुलसी एक दिन ललकार कर खड़े हो गये कि रे संसार! अब तू मुझे बाँध नहीं सकता क्योंकि मुझे हरि का संरक्षण प्राप्त हो गया है।

भगवत्पथ में एक स्तर ऐसा आता है कि जहाँ **'माया खलु नर्तकी बिचारी।'** *(रामचरितमानस, 7/115/4)*- वह तो नर्तकी मात्र है। **'करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।'** *(रामचरितमानस,7/115/7)*- उस भक्त के ऊपर वह प्रभुत्व नहीं जमा सकती जिस पर भगवान का वरदहस्त है।

पूज्य गुरु महाराज जी कहते थे- हो! हम चाहीं कि पतित हो जाईं, हम हो ही नहीं सकेंगे। भगवान मोके होखे न देइहैं। यह है प्रभु का प्रताप! ठीक इसी स्तर का यह भजन है- **'ठगनिया क्या नैना झमकावै। कबिरा तेरे हाथ न आवै।'**

रे ठगिनी! अब आँखें क्या तरेरती है? घूरकर क्यों देख रही है? कबीर अब तुम्हारे चंगुल में फँसनेवाला नहीं है। हमने अब जान लिया है कि तू कैसे-कैसे आक्रमण करती है!

रूपा पहिरि के रूप दिखावै, सोना पहिरि चमकावै।

भगवत्पथ की दो बाधाएँ कामिनी और कंचन हैं। कामिनी में केवल काम-वासना ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण कामनाएँ आ जाती हैं और कंचन में आ जाता है सांसारिक पद-प्रतिष्ठा और वैभव! कभी रूप के माध्यम से तो कभी कंचन के माध्यम से माया आवरण खड़ा करती है।

सीताजी के पास कोई कमी नहीं थी। जनक जी ने वह दहेज दिया था जो विधाता के घर में नहीं था। उस चक्रवर्ती सम्राट दशरथ की पुत्रवधू जिसके लिए गोस्वामी जी कहते हैं– **'दसरथ धन सुनि धनद लजाई।'** उनको जंगल में एक मृग दिखाई दिया तो झूम गयी। वह बोली– राम! देखो न! सोने के सींग, खुर सोने का, चमड़ा सोने का! भगवान ने देखा, अब तो यह सोने के पीछे पड़ गयी। यह हमें भी भूल गयी, आदेश देने लगी। उन्होंने कृपा करके सीता को सोने की गढ़ी में ही भेज दिया– ले भोग सोना! सीता को रोने को आँसू नहीं मिला, एक-एक दिन काटे नहीं कटा। भला इन जड़ पदार्थों में सुख कहाँ? और यदि कामिनी और कंचन में साधक नहीं उलझा तो–

गले डारि तुलसी की माला, तीन लोक भरमावै।

माया संन्यासिनी का वेष बना लेगी या गले में तुलसी की माला डाल लेगी, पतला-सा तिलक भी लगा लेगी, हाथ में कमण्डल ले लेगी और भ्रमण करती हुई साधक के पास चली आयेगी। वह भगवान की एक-एक सरस कथा पर, एक-एक शब्द पर आँसू बहाने लगेगी। अयोध्या, वृन्दावन इत्यादि तीर्थों में ऐसी घटनाएँ बहुत होती थीं। चित्रकूट में भी गुरु महाराज के समय में ऐसी घटना आयी थी।

कोलकाता विश्वविद्यालय की एक छात्रा बी.ए. पास कर दर्शनशास्त्र में परास्नातक की शिक्षा ग्रहण कर रही थी। उसके छः भाई थे, उन सबका विवाह अच्छे परिवारों में हो गया किन्तु इस कन्या को कोई वर पसंद ही नहीं कर रहा था। कन्या गुणवती थी, केवल रंग कुछ साँवला था। भौजाइयों में से किसी ने एक बार विनोद में ताना मारा कि बाईजी ने ऐसा रूप-स्वरूप धारण कर अवतार लिया है कि कोई इन्हें पसन्द ही नहीं कर रहा है।

इकलौती बहन का घर में बहुत दुलार होता है। मान-सम्मान में पली वह छात्रा तैश में आ गयी। उसने कहा– देखती रहो, ऐसा पति लाऊँगी जो तुम्हारे पतियों को उठाकर पटककर चढ़ बैठे, साथ ही ज्ञानी हो और गुणी भी हो। वह घर से निकल गयी। भाइयों ने बहुत खोजा, वह मिली ही नहीं।

वह छात्रा सीधे अयोध्या पहुँची। वहाँ वह सर्वत्र महात्माओं का निरीक्षण करती रही, शास्त्रार्थ छेड़ती रही। वहाँ से वह वृन्दावन होते चित्रकूट पहुँच गयी। चित्रकूट में तीन दिन से तहलका मचा हुआ था। अनुसुइया में नित्य ही कोई न कोई उसकी खबर सुना जाता था। लोग बताते थे– महाराज जी! एक ऐसी बाई जी आई हैं जिसे देखते ही साधु-महात्मा अपनी कुटिया में घुसकर ताला बन्द कर लेते हैं। उसके सामने कोई शास्त्रार्थ में नहीं टिक पा रहा है। वह सभी महात्माओं को ललकारे पड़ी है।

उस समय महाराज जी की सेवा में ब्रह्मचारी जी (पूज्य धारकुण्डी महाराज) ही थे। उन्हें आश्रम के लिए सामान लाने चित्रकूट जाना था। गुरु महाराज ने कहा– देखिहे रे! वहाँ पर एक भवानी आई है, भड़रौ (तहलका) मचाये पड़ी है। ब्रह्मचारी चले गये। लौटते समय वह सिरसा वन से गुजरे। उस दिन सिरसा वन में एक बहुत ही अच्छे महात्मा परसराम जी धूना लगाये विराजमान थे। वह लम्बे-तगड़े महात्मा! ऊँचाई लगभग सवा छः फीट। उनके पास पन्द्रह-सोलह मोटे-मोटे सेवक-शिष्य थे। दर्शन की वह छात्रा उस समय परसरामजी से प्रश्न-परिप्रश्न में उलझी थी– महाराज! घर क्यों छोड़ा जाता है? जब भगवान 'मुझमें तुझमें खड्ग खम्भ में' सब जगह हैं तो यह घर

छोड़कर कौन-सी विशेषता आप लोग पाते हैं? इसी प्रकार कुछ न कुछ अनाप-शनाप वह पूछती लगी रही और वह बताते जा रहे थे, संघर्ष चलता ही जा रहा था। उसी समय ब्रह्मचारी जी उनके समीप से निकले।

ब्रह्मचारी जी को देखते ही परसराम जी ने दूर से ही ललकारा– आइए, आइए ब्रह्मचारी जी! देखिए, इनके गुरु महाराज परमहंस जी घनघोर जंगल में रहते हैं, बहुत बड़े तपस्वी महापुरुष हैं, सिद्धपुरुष हैं। आइए विराजिये ब्रह्मचारी जी! उस छात्रा ने ब्रह्मचारी जी को ऊपर से नीचे तक देखा। वह गोर-अंगार तो थे ही, डील-डौल भी था। छात्रा ने कहा– ठीक है! मेरे प्रश्न का उत्तर आप ही दें। उसने वही प्रश्न किया। आश्रम के साधुओं के पास जानकारी तो होती ही है। जब यह क्षमता यहाँ के भक्तों में पायी जाती है तो साधकों का क्या कहना! दस मिनट में ही ब्रह्मचारी जी ने उसके सभी प्रश्नों का समाधान कर दिया।

छात्रा ने कहा– देखा, यह है समाधान! यह था उत्तर! आपलोग तो व्यर्थ ही दो घण्टे से माथा-पच्ची कर रहे थे। जिस फूल को मैं ढूँढ़ रही थी, पा गयी। मुँह से निकल ही तो आया बेचारी के! परसराम जी ने कहा– हूँ!,

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं॥

ताते अब लगि रहेउँ कुमारी। मन माना कछु तुम्हहिं निहारी॥

(रामचरितमानस, 3/16/9-10)

बचिएगा ब्रह्मचारी जी! अब यह फूल पा गयी है। ब्रह्मचारी जी उस समय लड़के ही थे, मारे संकोच के गड़ गये। वह सोच रहे थे कितने जल्द भाग लेते। परसराम जी से कहकर वह चलने को हुए तो वह छात्रा बोली– मैं भी आपके साथ चलूँगी। परमहंसजी के दर्शन करूँगी। ब्रह्मचारी जी ने कहा– देख, मेरे साथ न चल! नहीं तो वह बाबा तुझे काटकर नदिया में फेंक देंगे और हमारा भी जन्मभर के लिए आश्रम से पत्ता कट जायेगा। वह साधारण बाबा नहीं हैं। वह बोली– कोई बात नहीं! मैं अकेली ही आऊँगी। दर्शन के लिए तो मना हो ही नहीं सकता।

ब्रह्मचारी जी जब वहाँ से सौ-पचास मीटर निकल गये तो वह छात्रा भी वहाँ से उठी, चप्पल पहना, चश्मा लगाया और पीछे लग गयी। ब्रह्मचारी जी ने घूमकर देखा कि वह आ रही है। उनकी चाल स्वतः तेज हो गयी। वह इतनी तेजी से सीधे गये कि उससे एक घण्टा पहले ही महाराज जी के पास पहुँच गये। जो घटना घटित हुई थी, सबकुछ बता दिया और यह भी कहा– महाराज जी! वह यहाँ भी आ रही है। महाराज जी ने कहा– जब इतना ज्ञान-ध्यान बके हो तो आयेगी ही। अब आ ही रही है तो आवे।

कुछ देर पश्चात् वह छात्रा भी आश्रम पहुँच गयी। उसने नम्रतापूर्वक बड़ी श्रद्धा से महाराज जी को प्रणाम किया, एक ओर बैठ गयी। महाराज जी से उसने कुछ पूछा। जब महाराज जी उपदेश करने लगे तब वह धीरे-धीरे खिसकते-खिसकते महाराज जी के आसन के समीप आ जाती। महाराज जी बिगड़े– भाग चुड़ैल कहीं की! चढ़ी चली आवत है! चल उधर बैठ। वह मुस्कुराकर कोने में बैठ जाती थी और धीरे से फिर कुछ पूछ लेती थी। जब महाराज जी कुछ बोलने लगते थे तो वह पुनः खिसकते-खिसकते महाराज जी के समीप आ जाती थी। महाराज जी उसे पुनः डाटते थे। इस प्रकार उसने महाराज जी को बहुत परेशान किया। ब्रह्मचारी जी को तो भयङ्कर अपशकुन होने लगे। महाराज जी उसे घर लौट जाने को कहते थे लेकिन वह जाती ही न थी। महाराज जी ने आश्रम से उसे खाना-पीना देना बन्द करा दिया।

आश्रम से थोड़ी ही दूर पर अनुसुइया जी का एक मन्दिर था। उस समय महाराज जी के आश्रम और अनुसुइया मन्दिर के बीच जंगल था। उस मन्दिर का पुजारी उस छात्रा को रोटी दे दिया करता था। वह रात्रि में खा-पीकर अनुसुइया मन्दिर में रहती और बड़े सबेरे ही महाराज जी के पास प्रणाम करने आ जाती थी। महाराज पूछते भी– क्यों रे भवानी! कहाँ रही? वह कुछ बताती न थी, कहती थी– कृपा है गुरु महाराज की! धीरे-धीरे नौ दिन बीत गये।

दसवें दिन रात्रि में महाराज जी लेटे हुए थे। महाराज जी के आसन के पीछे चार-छः इञ्च नीचे एक आदमी के आने-जाने लायक खाली फर्श थी।

वह कोठरी में आने-जाने का रास्ता था। उसी गड्ढे में पाँव रखकर लोग नीचे आते-जाते थे। रात को बारह बजे वह छात्रा अनुसुइया मन्दिर से दबे पाँव आई और महाराज के आसन के पीछे निचले खाली जगह में लेट गयी। महाराज को अपशकुन होने लगा। वह उठकर बैठ गये। वह स्वगत कहने लगे– हूँ! बात क्या है? सीने में भयङ्कर धड़कन क्यों हो रही है? खतरा-खतरा फड़क रहा है! क्या है? शेर आ गया क्या? महाराज ने टार्च उठाकर देखा– कहीं कुछ भी नहीं था। जब महाराज उठकर बैठ गये तो उस छात्रा ने भी संकल्प-विकल्प करना बन्द कर दिया। इधर महाराज को भी अपशकुन होना बन्द हो गया। महाराज जी पुनः लेट गये।

कुछ देर पश्चात् वह छात्रा पुनः संकल्प-विकल्प करने लगी। महाराज बोले– फिर धड़कन! बात क्या है? कोई सरप-वरप तो पीछे नहीं आ गया? महाराज ने टार्च जलाकर पीछे की ओर देखा तो वह छात्रा लेटी हुई थी। महाराज हँसे और उठकर खड़े हो गये। साधनकाल में महाराज जी प्रायः दिगम्बर ही रहा करते थे किन्तु आश्रम में पहुँचने पर लोग मलमल का बारीक कपड़ा आग्रह करके बलात् पहना देते थे। वैसा ही एक वस्त्र महाराज जी ने लपेट रखा था। घुटने तक का वह अधोवस्त्र कभी आगे और कभी पीछे की ओर झूलता रहता था। यों कहा जा सकता है कि हमारे गुरु महाराज को ढंग से कपड़ा पहनना भी नहीं आता था। जैसे लपेट लिया वैसा ही पर्याप्त था। वह खड़े हुए और लपेटे हुए उस टुकड़े को खोलकर फेंकते हुए बोले– "देख! मोरे माथे तोर काम न चली। मैं सचहूँ के साधू हूँ। मोके भगवान साधू बनाये हैं।"

महाराज ने छड़ी हाथ में उठा लिया और बिगड़े– "चुड़ैल कहीं की! हजार बार कहा, यहाँ जंगल से भाग जा.....।" छात्रा समझदार थी। छड़ी महाराज जी के हाथ में देखते ही वह समझ गयी कि अब मार पड़ेगी, वह सन्न से भाग गयी।

महाराज जी ने आश्रमीय सेवकों से कहा– देखो रे! वह चुड़ैल यहाँ आकर पड़ी थी। लोगों ने उसके दुस्साहस पर आश्चर्य व्यक्त किया। बड़े सवेरे

वह पुनः चली आयी और ब्रह्मचारी जी से बोली– "बस! हमने अन्तिम परीक्षा ले लिया। हमें सच्चे महापुरुष के दर्शन हो गये। अब मैं कहीं नहीं जा सकती। मैं यहीं रहकर भजन करूँगी और गुरु महाराज की सेवा करूँगी। गुरु महाराज नंगे रहते हैं, मैं भी नग्न रहूँगी। क्यों गुरुभाई!" ब्रह्मचारी जी वहाँ से हटकर गुरु महाराज के पास चले गये।

उसी समय महाराज जी के दो गृहस्थ भक्त सेमरिया गाँव से आ गये। महाराज जी ने कहा– "क्यों पाँड़े! इसे पकड़कर गाँव ले जा और इसके घर भेज!" वे लोग उसे पकड़ने बढ़े तो उसने कहा– "मुझे छूना मत! मैं काली का अवतार हूँ। भस्म हो जाओगे।" वह लोग झिझके। महाराज जी ने कहा– "क्यों रे, जब मैं कहत हूँ तो तू कौन-सी काली से डरता है?" उन लोगों ने कहा– जो आज्ञा महाराज! फिर पाण्डे ने पकड़ा पखौड़ा और घसीट ले चला। महाराज जी ने कहा– "नहीं रे! सम्मान के साथ ले जा और चली जा बेटा! तुम्हारा इसी में कल्याण है।" उसने गुरु महाराज को प्रणाम किया और बोझिल मन से गाँव चली गयी।

जब वह छात्रा गाँव पहुँची तो गाँवभर की स्त्रियाँ एकत्र हो गयीं। उनमें कुतूहल था कि नौ दिन से जो महाराज को तंग कर रही थी, वही आई है। चले देखें कौन है? कैसी है? गाँव के स्त्री-पुरुष सभी एकत्र हो गये। उन सबके समक्ष उस छात्रा ने अच्छा उपदेश दिया। पहले तो उसने अपना परिचय दिया, फिर कहा– यह महाराज जी भगवान हैं। वह ब्रह्मचारी जी बड़े अच्छे महापुरुष होंगे। हमने बहुत भ्रमण किया लेकिन न हमने यह विद्या कहीं देखी, न संतों की ऐसी रहनी कहीं देखी। आप सभी भाग्यवान हो जो आपका यहाँ जन्म हुआ। मेरा दुर्भाग्य है कि मैं जा रही हूँ। गुरु महाराज का आदेश है कि 'बेटा! घर में रहकर भजन कर, तुम्हें मदद मिलेगी।' इसलिए आप सबसे विदा लेती हूँ। यही है– **'गले डारि तुलसी की माला, तीन लोक भरमावै।'**

संग ते जती कुमंत्र ते राजा। *(रामचरितमानस)*

गुरु महाराज जी कहते थे– हो! हम आश्रम में अपनी बहन को रहने की अनुमति दें, अपनी माँ को रखें या किसी बिटिया को रहने दें; लोग क्या जानेंगे! लोग तो यही कहेंगे कि बाबा मेहरिया रखे हैं। इसलिए **'यद्यपि शुद्धम् लोकविरुद्धम् न करणीयम्।'**– हालांकि शुद्ध है, निर्दोष है लेकिन कोई आचरण लोकदृष्टि के विरोध में है तो **'न करणीयम्'**– नहीं करना चाहिए। साधुता के प्रतिबन्ध इतने कठोर होते हैं। इसीलिए गुरु महाराज के इस निर्देश का पालन आज भी यथावत् है– ज्यों-का-त्यों कहीं कोई संशोधन नहीं। अग्रेतर पंक्तियों में सन्त कबीर बताते हैं कि जब माया येन-केन प्रकारेण कामयाब हो गयी तब क्या होता है?–

कद्दू काट मृदंग बनाया, नीबू काट मजीरा।

लौ ही लौकी है। माया भजन की लौ (इष्टोन्मुखी प्रवृत्ति) ही काट देती है, सुरत की डोर भगवान में नहीं रह जाती। फिर चाहे आप भजन में बैठे ही क्यों न रहें, मृदंग बजता रहता है कि यह चाहिए, वह चाहिए। मन योजनाएँ बुनने लगता है। चित्तवृत्ति में तरंगें उठने लगती हैं और प्रभु के चिन्तन का जो नियम था, वह नियमरूपी नीबू भी कट जाता है। भजन में, नियम में कटौती होने लगती है, नियम से बैठने पर मजीरे की तरह टन्न-टुन्न कुछ आवाज आने लगती है, स्वाँस छूट जाता है। विकारों के संकल्प-विकल्प स्वाँस को दूषित कर देते हैं। साथ ही,

'पाँच तुरैया मंगल गावैं'– पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ– त्यागरूपी तुरैया, इन ज्ञानेन्द्रियों में पूर्ण त्याग की जो स्थिति थी, ये पाँचों– रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श जो बाहर देख रही थीं, त्याग द्वारा उसे अपने अन्तःकरण में ही देखने का अभ्यास कर रही थीं, रूप हृदय में देख रही थीं, इष्ट की वाणी शब्द को समझ रही थीं– अब तक तो त्याग था किन्तु माया ने जब छेड़ ही दिया तो इन्द्रियों का संयम टूट गया। त्याग से संयुक्त पाँचों इन्द्रियाँ **'अमंगल गावैं'**– पहले तो भजन कर रही थीं, अब ये अमंगल गायन करने लगती हैं, जिसमें अकल्याण है उसका चिन्तन करने लगती हैं।

जहाँ इन्द्रियाँ बाहर की ओर बहकीं तो **'नाचे बालम खीरा'**– बालम अर्थात् प्रियतम प्रभु के प्रति ख्यालरूपी खीरा नाचने लगता है, डगमगाने लगता है। सुरत वहाँ से लड़खड़ा जाती है, उसमें कम्पन पैदा हो जाता है। ऐसी दशा में,

उल्टा चिल्ली देत पैतरा, कौआ तीर चलावे।

चित्त ही चिल्ली है, चिल्होर है। यह सीधा भजन में लगा था, अब उधर से पलटकर पैंतरा भाँजने लगता है। संसार में वैभव विभूति का अन्वेषण करने लगता है कि आश्रम बना लें तो इतनी महिमा फैल जायेगी। काम ही कौआ है। यदि हम भजन में प्रवृत्त हैं तो करम या तकदीर में कैसा भी कुसंस्कार हो, कामयाब नहीं हो सकता, वह दबा रहेगा या क्षीण होकर समाप्त हो जायेगा किन्तु ज्योंही चित्त पलटकर संसार में पैतरा भाँजने लगा तो उस करम संस्कार को खुलकर खेलने का अवसर मिल जाता है, प्रसुप्त संस्कार कामयाब होने लगते हैं, घटित होने लगते हैं। वे तीर मारने लगते हैं। वृत्ति और भड़कती जाती है।

पेड़ चढ़े मछली फल खावे, बगुला भोग लगावै।

भौतिक जगत् में पेड़ पर मछली कैसे चढ़ सकती है किन्तु अध्यात्म में ऐसा ही है। संतों ने मन की उपमा मछली से दी है–

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना।।

(रामचरितमानस, 7/110/11)

अब तक भक्तिरूपी जल में मन मछली की तरह था लेकिन जब चित्त माया में पैतरा भाँजने लगता है, मन संसाररूपी वृक्ष में फल ढूँढ़ने लगता है। अब **'संसार विटप नमामहे'** *(मानस, 7/12/5)*– गीता में भी संसार को वृक्ष की संज्ञा दी गयी है–

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तंवेद स वेदवित्।। *(गीता, 15/1)*

ऊपर परमात्मा जिसका मूल है, नीचे कीटपतंगपर्यन्त प्रकृति जिसकी शाखा-प्रशाखा है, संसार ऐसा एक वृक्ष है। माया से आप्लावित मन अब कामना करके इसी संसार वृक्ष से फल प्राप्त करना चाहता है। संसार में शाश्वत कुछ भी नहीं है। जो कुछ होगा, क्षणिक होगा किन्तु मनरूपी मछली यही खाना चाहता है और **'बगुला भोग लगावै'**– ऊपर से तो साफ-सुथरा किन्तु भीतर से बकध्यानी प्रवृत्ति जागृत हो जाती है। साधु देखने में तो ठीक रहेगा किन्तु कहीं माल-पानी मिला तो चोंच अवश्य लग जायेगी। वह अवश्य फिसल जायेगा क्योंकि करम को तीर चलाने का अवसर मिल जायेगा। मायाग्रस्त ऐसा साधक जब संसार में ही कल्याण ढूँढ़ने लगा, बकध्यानी प्रवृत्ति आ गयी, ऐसे साधक को केवल एक वस्तु अच्छी लगती है–

भैंस पद्मिनी चूहा आशिक, मेढक ताल लगावै।

भ्रम ही भैंस है। साधक को संसार की भ्रान्तियाँ ही श्रेष्ठ लगने लगती हैं जिस तरह नारियों में पद्मिनी को श्रेष्ठ माना जाता है उसी तरह माया से विवश साधक को भ्रम कल्याणकारी प्रतीत होने लगता है और **'चूहा आशिक'**– चित्त ही चूहा है, वह उत्तरोत्तर उस भ्रम में आसक्त होता जाता है। **'मेढक ताल लगावै'**– मनवै मेढक है। यह समय-समय पर टर्र-टर्र ताल लगाता रहता है। यह एक क्षण में साधुता की बातें करेगा तो दूसरे क्षण व्यवसाय-कारोबार की ओर चला जायेगा।

छतरी चढ़ि के मकरी नाचै, झींगुर बन्द लगावै।
ठगिनिया क्या........।

जहाँ इतनी गिरावट आयी तहाँ मायारूपी मकड़ी साधक के सिर पर चढ़कर अपना जाल बुन देती है, दिल खोलकर नृत्य करने लगती है। लोकगीतों में भी माया के लिए मकड़ी का प्रयोग देखने को मिलता है–

तोहके घेरले बाटऽ ई माया, जैसे जाला मकड़ी।

उस समय झंझटरूपी झींगुर बन्द लगाने लगते हैं, माया को बढ़ावा देते हैं। तरह-तरह की झंझट उसके सामने आकर खड़े होते हैं जिनसे वह न

निकल पाता है न भजन-चिन्तन के लिए सोच ही सकता है। अब साधुता में बचा क्या? इस पर कहते हैं–

चोलना पहन के गदहा नाचे, ऊँट विसन पद गावै।

वेषभूषा तो सन्त का है, चोला तो ठीक पहना है लेकिन है गधा। गधा जड़ता का प्रतीक है। रावण के अनेक सिरों में एक सिर गधे का था। इस साधक की भी यही दशा है। वह खूब नाचता है– कभी इधर फरेब रचता है तो कभी उधर रचता है, कभी यह तो कभी वह योजना बनायेगा, कभी लोककल्याण के नाम पर शिविर खोल देगा, कभी पत्रिका निकालेगा– कुछ न कुछ करता ही रहेगा किन्तु वह है गधा! मूढ़! जड़! उसके पास देने लायक कुछ भी नहीं है।

एक बार हम दिल्ली गये हुए थे। वहाँ हमें एक महात्मा मिले जो अपने को ब्रह्माण्ड गुरु कहते थे। उनका चैलेन्ज था– 'जो उनकी घोषणाओं को गलत सिद्ध कर देगा उसे एक लाख रुपये वह ईनाम देंगे।' एक पतली-सी पुस्तिका में वे घोषणाएँ थीं। हमने साथ चल रहे भक्तों से कहा– पूछ लो, इनके पास पहनने को कपड़ा है या लाख रुपया ईनाम ही देंगे। यही था चोलना पहन के गदहा नाचै। थोथा चना बाजे घना! करता कुछ नहीं था, कहता था– 'मैं आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ।'; यही सब लिखा था उसकी घोषणाओं में! ऐसा साधक साधुता की प्रदर्शनी खड़ी कर देता है लेकिन '**ऊँट विसन पद गावै**'– ऊँट अर्थात् उर, उसका हृदय व्यसनों का पद गा रहा है। किसी को अफीम खाने का व्यसन है, किसी को गाँजा-शराब पीने का व्यसन, किसी न किसी प्रकार का सांसारिक व्यसन उसके हृदय में लगा है। जब भ्रमपूर्ण विचार ही श्रेष्ठ लग रहे हैं तो वही व्यसन हैं।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु शरण बचावै।

कबीर साहब कहते हैं– संतो! ध्यान से श्रवण करें। इस माया से मैं तो बच गया लेकिन सबके बचने का केवल एक मार्ग है– सत्‌गुरु की शरण ही इस ठगिनी माया से बचा सकती है।

द्वार धनी के पड़ि रहे, धक्का धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजिहैं, जो दर छाँड़ि न जाय।।

धनी अर्थात् मालिक के दरवाजे पर पड़े रहो। मालिक ही है तो भूल-चूक के लिए डाँट पड़ेगी, धक्का मिलेगा। महाराज जी नाराज होते तो बोलते– बाँध बिस्तर! भाग यहाँ से! तोर बाप कमाय के लाये रहा, भोजन करै बैठ गया थरिया लेके? कभी-कभी किसी साधक को भोजन कराये बिना ही भगा देते थे। लेकिन वह जंगल में अन्यत्र जाता भी कहाँ? वह दाहिने-बायें कहीं हट जाता और शाम होने से पहले ही आश्रम चला आता था। फिर भी एक समय का उपवास तो हो ही जाता था। आश्रम में एक ही समय मध्याह्न में भोजन बनता था, शाम को भोजन नहीं बनता था। अब डाल का चूका बन्दर और पंगत का चूका साधु, दूसरे दिन ही अन्न से भेंट होती है।

महाराज जी दयालु भी बहुत थे। नाराज होने के दस-बीस मिनट में ही खुश हो जाते थे। फिर उस साधक को कुछ खिलाने-पिलाने को कह देते थे। कुछ न हो तो कह देते थे– "दे रे गुड़-सुड़! ठीक है, महीना में एक दिन उपवास जरूर करै का चाही। पेट की मशीन बन्द तो होती नहीं। उपवास करने पर मशीन पेट में बचे कचरे को जलाकर नीरोग बना देती है। उससे आरोग्य बढ़ता है, रोग पास नहीं आते। क्यों रे! बैरागी लोग साल में चौबीस एकादशी व्रत रहते हैं, उपवास करते हैं, तू एकौ न रहिहै।" इस प्रकार डाँट पड़ गयी, पेट में अन्न नहीं! भजन छोड़कर बचा ही क्या? पश्चाताप के साथ, स्मृति के साथ, चिन्ता के साथ लगने से भजन होता है। इस प्रकार महापुरुष के दरबार में धक्का भी मिलता है।

कबहुँक धनी निवाजिहैं, जौ दर छाँड़ि न जाय।

एक दिन ऐसा आयेगा कि धनी तुम्हें अपने संरक्षण में ले लेगा। तुम्हें अपना धाम मिल जायेगा, यदि उस धक्का-मुक्की से ऊबकर धनी का दरवाजा छोड़कर भाग नहीं जाते।

जब कभी कोई गृहस्थ भक्त गुरु महाराज के दर्शन को आता और हठ करने लगे कि महाराज! अब घर जाने का मन नहीं करता, तो महाराज जी उससे कहते थे– "हो! जाये का त पड़बै करी! बिना गये बनबौ ना करी! शरीरिया से यहूँ पड़े रहे से का होई? लेओ, फिर जाओ! शरीरिया से कहीं भी रहो, मनवा से आवा-जावा करो। साँझौ-विहान मोर रुपवा देखि लै जइहै, वहि दिन जेकर नाम भजन है वह तुम्हें मैं यहाँ बैठे-बैठे दे दूँगा और तू पाऊ जइहै।" भजन कहने में नहीं आता, लिखने में नहीं आता, किताबों में भजन है ही नहीं। वह तो अनुभवी सद्गुरु के द्वारा किसी-किसी अनुरागी विरही साधक के हृदय में जागृत हो जाया करता है। कबीर कहते हैं कि ऐसे सद्गुरु की शरण ही माया से बचा सकती है।

'रे ठगिनिया! क्या नैना झमकावै।'– ठगनेवाली नटिनी! अब क्या आँखें टेढ़ी-मेढ़ी करती है, ललचायी आँखों से क्या दृष्टिपात् करती है! **'कबिरा तेरे हाथ न आवै'**– कबीर अब तुम्हारे चंगुल में फँसनेवाला नहीं है। भगवत्-पथ में एक स्तर ऐसा आता है जहाँ माया रहती तो है किन्तु उस साधक पर भगवान का वरदहस्त भरपूर रहता है इसलिए माया **'करि न सकै कछु निज प्रभुताई।'** *(रामचरितमानस, 7/115/7)*– वहाँ वह अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकती। वहाँ माया नाचनेवाली नटी मात्र है। यह सब उनके लिए है जो गुरु के सहारे अहर्निश प्रतिज्ञाबद्ध होकर साधना, सेवा, चिन्तन में लगे रहते हैं और अन्ततः वे पा जाते हैं।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

अमृतवाणी

(कैसेट संख्या– 19:1)

अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा

आज का प्रश्न है– ज्ञान? तुलसीदास जी कहते हैं–

जोगु कुजोगु ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू।।

(रामचरितमानस, 2/290/2)

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। *(गीता, 10/3)*

जो मुझ अजन्मा, अनादि, सम्पूर्ण लोकों के महान् ईश्वर को विदित कर लेता है वह मरणधर्मा मनुष्यों में ज्ञानवान् है। वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। ज्ञान कोई ऐसी वस्तु है कि इधर ज्ञान और उधर पापों से छुटकारा। ज्ञान मुझ अजन्मा, अनादि, लोकमहेश्वर को विदित कर लेना है अर्थात् परमात्मा की प्रत्यक्ष जानकारी के साथ मिलनेवाली अनुभूति का नाम ज्ञान है। गीता में ही है–

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। *(गीता, 13/11)*

आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना अर्थात् आत्मा के आधिपत्य में निरन्तर आचरण करना, उन प्रभु के निर्देशों पर चलते-चलते परमतत्त्व परमात्मा को विदित कर लेना ज्ञान है और इसके विपरीत सृष्टि में जो कुछ है अज्ञान है।

पूज्य गुरुदेव का कहना था कि जब तक इष्ट तुम्हारे हृदय से रथी न हों, भगवान तुम्हें भजन न पढ़ायें तब तक पूर्ण निवृत्ति दिला देनेवाला भजन जागृत ही नहीं हुआ। भजन ही एक ऐसी वस्तु है जो कहने में नहीं आती, लिखने में नहीं आती; किसी अनुभवी सद्गुरु के द्वारा किसी श्रद्धालु के हृदय में जागृत हो जाया करती है। उस जागृति का परिणाम यह होता है कि जिस परमात्मा की हमें चाह है, हमारी पुकार ऐसी हो कि वह परमात्मा जिस सतह पर हम खड़े हैं उस सतह पर उतर आयें, हमारे पास आ जायँ, आत्मा से अभिन्न होकर खड़े हो जायँ और हमारा मार्गदर्शन करने लगें।

यही है '**अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं**'– अंतरात्मा के आधिपत्य में निरन्तर चलना; जैसा इशारा मिले, जो आदेश मिले, उस पर चलना! उन प्रभु के संरक्षण में निरन्तर चलते-चलते उन परमतत्त्व परमात्मा का दर्शन ज्ञान है। इस प्रकार ज्ञान की निम्नतम सीमा वह है जब इष्टदेव आपके हृदय से निर्देशन करने लगें और इसकी अधिकतम सीमा वहाँ है कि वह प्रभु जहाँ से निर्देशन कर रहे हैं, उनका स्पर्श और उनमें स्थिति। अतः ज्ञान परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन के साथ मिलनेवाली अनुभूति है। इसके अतिरिक्त सृष्टि में ज्ञान-अज्ञान की अनेकों परिभाषाएँ और कसौटियाँ हैं वे जीवनयापन के तौर-तरीके हैं, शिष्ट संस्कृति हैं। संत कबीर भी ज्ञान को आध्यात्मिक सन्दर्भ में लेते हैं। अपने एक भजन में वह कहते हैं–

ऐसा ज्ञान ना देखा रे अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।

पहिले मोरी माई मरि गई, पीछे जनम हमार।
बाबा चले हैं ब्याह करन को, हमहूँ चले बरात।।
रे अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।
पाँच भाइ हम एक संग जनमे, चारि के मरते देखा।
पाँच पचिस भौजइया मरि गईं, हमहीं लगावत लेखा।।
रे अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।

एक चिंउँटी के मृत्यु भये ते, नौ लख गिद्ध अघायँ।
कुछ खइलें कुछ भुइयाँ गिरवलें, कुछ छकड़न ले जायँ।।
अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।

सन्तोष तखत पर जन राजा, विवेक लगी दरबानी।
जगमग ज्योति जले घट भीतर, मुक्ति भरे तहँ पानी।।
रे अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।

सुन्ने आइल सुन्ने गइले, सुन्न भइल परवेसी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कमी रही ना बेसी।।
रे अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा संग्रहित सांसारिक जानकारियाँ ज्ञान नहीं हैं। संसार में आये दिन कहीं सत्ता परिवर्तन, कहीं जन्म-शादी-विवाह की खबरें, कहीं बुजुर्गों की शव-यात्रा से समाचार-पत्र भरे पड़े हैं। उत्थान-पतन की घटनाओं से मानव पल-पल परिचित हो रहा है। लेकिन कबीर साहब इसे ज्ञान नहीं मानते। वह बताते हैं कि ज्ञान का आरंभ कहाँ से है?

अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।

अवधूत योगी का पर्याय है। वधू अर्थात् माया! जिस पर इस माया का प्रभाव कम हो, अवध्य स्थिति के लिये जो प्रयत्नशील हो! योगियों के लिये इस सम्बोधन का प्रयोग गोरखनाथ जी के शिष्यों तथा बौद्ध-परम्परा के तांत्रिकों में अधिक पाया जाता है। वहाँ सुख-दुःख के भान और बाह्य आचार से ऊपर श्रेष्ठ योगियों को अवधूत कहने का प्रचलन है। सन्त कबीर अवधू को उसकी वेषभूषा और साधना-पद्धति की व्यर्थता बताते हुए योग के रहस्य पर प्रकाश डालते हैं–

अवधू! जोगी जग से न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न खंडे धारा।।
अवधू......।।

बसै गगन में दुनी न देखे, चेतन चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसन नहिं छोड़े, पिवै महारस मीठा।।
अवधू......।।

परगट कंथा मां है जोगी, दिल में दरपन जोवै।
सहस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै।।
अवधू......।।

ब्रह्म अगिनि में काया जारै, त्रिकुटी संगम जागे।
कहे कबीर सोई जोगेश्वर, सहज सुन्नि ल्यौ लागे।।
अवधू......।।

हे अवधूत! योगी तो संसार से अलग होता है। सन्त कबीर के समकालीन गोरखपन्थी योगी कान में मुद्रा (कुण्डल) और गले में सींग की तुरही (श्रृंगीनाद) पहनते थे। इस वेष को महत्व न देकर सन्त कबीर कहते हैं कि वैराग्य ही योगी की मुद्रा है, सुरत ही श्रृंगी है। उसे बजाकर वह चिन्तन की धारा को खण्डित नहीं करता। वह चिदाकाश में रहता है, दुनिया से अपेक्षा नहीं रखता। वह सचेतावस्था की चौकी पर बैठता है। चिदाकाश में विचरण करते हुए भी वह आसन नहीं छोड़ता, मधुर रस का पान करता रहता है। देखने में वह कन्था, गुदड़ी ओढ़े रहता है लेकिन वस्तुतः वह दिल के दर्पण में देखता रहता है। वह रात-दिन में इक्कीस हजार छः सौ श्वास के धागों को नाम में पिरोता है, ब्रह्मरूपी अग्नि में शरीर को जलाता रहता है, त्रिकुटी के संगम में वह जागता है, सहज शून्य में लौ लगाये रहता है।

इसी प्रकार वह अवधू को ज्ञान का रहस्य बताते हैं कि **'ऐसा ज्ञान न देखा।'**– हे अवधूत! ज्ञान आँखों से देखने की वस्तु नहीं है, बुद्धि से जाँचने की वस्तु नहीं है अर्थात् वह अचिन्त्य है, अगोचर है। उस ज्ञान की शुरुआत कहाँ से है? इस पर सन्त कबीर कहते हैं–

पहिले मोरी माई मरि गई, पीछे जनम हमार।

यावन्मात्र जगत्– चाहे राम जन्मे हों, चाहे कृष्ण– सबका जन्म माताओं से होता है; लेकिन कबीर का कहना है– '**पहिले मोरी माई मरि गई**'। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं– अर्जुन! त्रिगुणमयी प्रकृति ही गर्भ को धारण करनेवाली माता है और मैं परम चेतन ही बीजरूप से पिता हूँ। सांसारिक माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं। प्रकृति ही माता है। माताओं से ही शरीर का जन्म होता है लेकिन इसके विपरीत एक जन्म ऐसा भी है जिसके पीछे मृत्यु नहीं है। आदिशंकराचार्य जी से शिष्यों ने पूछा– भगवन्! कौन-सा जन्म सराहनीय है? उन्होंने उत्तर दिया– वही जन्म सराहनीय है जिसकी मृत्यु न हो और वही मृत्यु सराहनीय है कि पुनः जन्म न हो। वह है आत्म-दर्शन और स्थिति! द्रष्टा की स्वरूप में स्थिति!

एक जन्म तो हम सबका हो चुका है। शरीर का एक कलेवर हम सबके पास है। भगवान श्रीकृष्ण ने इसे वस्त्र की संज्ञा दी है–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ *(गीता, 2/22)*

पुराने वस्त्र को त्यागकर मनुष्य जैसे नया धारण कर लेता है, इसी प्रकार भूतादिकों का स्वामी यह आत्मा जिस शरीररूपी वस्त्र को त्यागता है, त्यागकर नवीन शरीर धारण कर लेता है। आप पर हमला होने पर कोई आपका वस्त्र छिपाकर रख दे तो क्या आपकी रक्षा हो गई? शरीर का वस्त्र तो सर्प के केंचुल की तरह बदलना ही है। यह जन्म वस्त्रों का परिवर्तन मात्र है जो आज हम सबको उपलब्ध है। आपके हृदय में आपका सहज स्वरूप छिपा हुआ है, वही आपका रूप है। उस स्वरूप की प्राप्ति तब है जब पहले मायारूपी माता मर जाय। यही है– '**पहिले मोरी माई मरि गई**'। जब तक माया रंचमात्र भी शेष है, तब तक स्वरूप और आपके बीच में एक पर्दा पड़ा हुआ है। माया का अंतिम अस्तित्व जिस दिन शान्त हुआ तत्क्षण यह आत्मा

अपने सहज स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। माया के रहते यह कदापि सम्भव नहीं है। माई के मरते ही '**पीछे जन्म हमारा**'- वही जन्म हो गया जिसके पीछे मृत्यु नहीं है जैसा कि गीता में है-

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता, 18/62)

अर्जुन! तुम परमशान्ति प्राप्त कर लोगे, उस घर को पा जाओगे जो शाश्वत है - तुम्हारा घर रहेगा और तुम्हारा जीवन! अर्थात् वह आत्मभाव को प्राप्त हो जाता है। यह स्थिति कैसे मिलेगी? माया पिण्ड छोड़े कैसे? उसका उपाय बताते हैं-

बाबा चले है ब्याह करन को।

परिवार में बुजुर्ग पिता के भी पिता को 'बाबा' कहा जाता है; किन्तु आज घर-द्वार छोड़कर कोई सन्त हो गया है तो वह भी बाबाजी कहलाता है क्योंकि वह भी पुराण पुरुष परमात्मा की ओर अग्रसर है। इस प्रकार सत्गुरु उस परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने की कुंजी है। ब्याह का आशय है सम्बन्ध जोड़ना! '**बाबा चले है ब्याह करन को**'- उस परमात्मा से सीधा सम्बन्ध जोड़ने चले। आरम्भ में साधक बड़ा गरियार (अड़ियल) होता है। जैसे नया बछड़ा जब पहली बार हल में जोता जाता है, उसे संकेत करें इधर तो वह भागेगा उधर! वह कभी अपना पाँव तुड़ा लेता है, कभी मालिक का, तो कभी हल का जुआ ही तोड़ देता है। किसी नौसिखिया ड्राइवर को आप ट्रैक्टर की स्टेयरिंग पकड़ा दें, पाँच मिनट उधर ध्यान न दें तो वह खड्ढ में गिरा देगा, स्वयं भी गिर जायेगा। इसी तरह साधना के प्रवेशकाल में साधक धकेले-धकेले चलता है- '**हमहूँ चले बरात**'- हम भी बलात् चले।

आदि शंकराचार्य दिग्विजय करते प्रयाग पहुँचे। वहाँ एक कर्मकाण्डी महात्मा कुमारिल भट्ट धान की भूसी पर आग लगाकर बैठे हुए थे। वह शरीर को तिल-तिल जलाकर प्रायश्चित करने में लगे थे। शंकराचार्य जी ने उनसे

कहा– "इस प्रकार चमड़ी जलाने से मोक्ष कैसे मिलेगा? आइये, शास्त्रार्थ कीजिए!" कुमारिल ने कहा– "अब तो मैं व्रत ले चुका हूँ। मेरा शिष्य मण्डन मिश्र मेरे ही समान है। आप उससे शास्त्रार्थ करें!" शंकराचार्य मण्डन मिश्र के पास पहुँचे तो वे बिगड़ खड़े हुए– "कल के लड़के ! तुम्हें सन्न्यास लेने का अधिकार कहाँ है?" शंकराचार्य ने कहा– "महोदय! बालक तो आप हैं। शरीर के बाल पक गये तो इस चमड़ी के बाल पक गये! झुर्रियाँ पड़ गयीं तो वस्त्र में पड़ गयीं। महान् वह है जो आत्मतृप्त और आत्मस्थित है। बड़ा मैं हूँ। आपको तो अभी बहुत कुछ सीखना है।" कई दिन सत्संग चला और अंततः मण्डन मिश्र को पराजय स्वीकारना पड़ा। उस समय मण्डन मिश्र की आयु 75 वर्ष और शंकराचार्य की आयु 18 वर्ष के लगभग थी। तात्पर्य यह है कि जो पुराण पुरुष परमात्मा को प्राप्त, आत्मस्थित है ऐसा महापुरुष ही सत्गुरु होता है, बाबा होता है। वह भटके हुए पथिक को पकड़कर सीधे परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ देता है और '**हमहूँ चले बरात**'– साधक बलात् चलता है। लाख सिखायें, बालक भूल करते ही हैं।

माता के मरने के पश्चात् आपका जन्म हुआ। प्रश्न उठता है कि क्या आपका अकेले जन्म हुआ? कबीर कहते हैं– नहीं,

पाँच भाई हम एक संग जनमे, चार के मरते देखा।

पहले हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध के पीछे भागती रहती थीं; उन सत्गुरु के आदेश के अनुसार ये पाँचों सिमटकर अहर्निश इष्टोन्मुख प्रवाहित हो गयीं। पहले ये बहिर्मुखी थीं, अब अंतर्मुखी हो गयीं। इन्द्रियाँ बाहर रूप देख रही थीं, अब हृदय में इष्ट का स्वरूप पकड़ने लगीं। ये सुख के लिये संसार में रस ढूँढ़ रही थीं, अब हृदय में ब्रह्म-पीयूष ढूँढ़ने लगीं, प्रभु की दिव्य गंध पकड़ने लगीं, पावन-चरणों का स्पर्श पाने लगीं, भगवान की आवाज पकड़ने लगीं। '**पाँच भाई हम एक संग जनमे**'– आँख बाहर देखती हो, कान भीतर सुनें– यह असम्भव है। सभी इन्द्रियाँ सिमटकर एक साथ लगती हैं। क्रमशः चार इन्द्रियों के क्रियाकलाप शान्त हो

जाते हैं, मात्र शब्द रह जाता है। शब्द ब्रह्म है, जहाँ से परमात्मा निर्देश देता है वह मूल मात्र रह जाता है। इसके साथ ही–

पाँच पचिस भवजइया मरि गईं, हमहीं लगावत लेखा॥
रे अवधू! ऐसा ज्ञान ना देखा।

पाँच तत्त्व– छिति-जल-पावक-गगन-समीर इस शरीर के निर्माता हैं। पचीस प्रकृति इन पाँच का पाँचों में संचारित होना है; जैसे– पृथ्वी में आकाश भी है, अग्नि है, वायु है, जल भी है लेकिन बहुतायत पृथ्वी की है। इसी प्रकार आकाश में भी अग्नि, वायु, पृथ्वी, सभी तत्त्व विद्यमान हैं लेकिन मूल आकाश है। इस प्रकार पाँचों में पाँचों का संचार होने से इनमें क्रिया आरम्भ हो जाती है। ये हैं पचीस प्रकृति। कबीर कहते हैं– '**पाँच पचिस भवजइया मरि गईं**'– भव माने होता है संसार! संसार में बार-बार जन्म देनेवाले पाँच तत्त्व और पचीस प्रकृति मिट गये। कब? पहले पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ इष्टोन्मुखी हुईं, शब्द मात्र रह गया। शब्द ही ब्रह्म है, उस समय पाँच तत्व और पचीस प्रकृति जो आवागमन में भटकानेवाली थीं, वह भी शान्त हो गयीं लेकिन '**हमहीं लगावत लेखा। रे अवधू! ऐसा ज्ञान ना देखा।**' यह स्थिति भक्त के हृदय की है। इसे वही जानता है जिसके हृदय में यह स्थिति आ गई है।

कै जाने जिउ आपना कै रे जनावे पीउ।

या तो वह जानता है जिसमें यह स्थिति आयी या भगवान करुणा कर किसी को बता दें, वह भी जान जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश की घटना है। हमारे गुरुदेव के भी गुरुदेव एक पागल, विक्षिप्त और उन्मत्त की तरह घूमा करते थे। महाराज जी ने बताया कि पचासों बार हमने उन्हें सड़क पर आते-जाते देखा था। लोग उन्हें कहते कि यह पागल हैं, मैं भी जानता था कि यह पागल हैं। लेकिन हमारे गुरु महाराज को आकाशवाणी हुई कि इस मन्दिर में तुम्हारे गुरु महाराज हैं। महाराज जी खण्डहर हो चले उस मन्दिर में गये और घूमकर लौट आये, वहाँ कोई न दिखा क्योंकि मन्दिर में धुप्प अँधेरा था। महाराज जी को बड़ी झुँझलाहट हुई कि पता नहीं कौन हमें आवाज देता है कि इसमें

गुरु महाराज हैं। इसमें तो कोई नहीं है। इतने में भीतर से खाँसने की आवाज आयी। वास्तव में उसमें वही महापुरुष बैठे थे। गुरु महाराज ने वहाँ प्रकाश की व्यवस्था की, तीन दिन तीन रात उनकी सेवा में लगे ही रह गये। इस अल्प अवधि में गुरु महाराज से साधन-क्रम सीखा और भजन में लगे रह गये। कुछेक वर्षों में ही महाराज जी 'महाराज' हो गये। उनके हृदय में वह स्थिति थी। प्रकृति उनके लिये समाप्त थी। वह शब्द-ब्रह्म में स्थिति पा गये। यह सब **'हमही लगावत लेखा'**– वही जानता है जिसके हृदय में यह घटित होता है अथवा प्रभु कृपा करके जिसे बता दें। महाराज जी बताते थे कि हम उन्हें पागल जानते थे, भगवान ने आदेश दिया 'यह तुम्हारे गुरु महाराज हैं।' इस प्रकार भगवान जिसे समझा दें, वह भी जान जाता है। अगली पंक्ति में कहते हैं–

एक चिंउँटी के मृत्यु भये ते, नौ लख गीध अघायँ।

योगी के सिमटे हुए संयत चित्त को, निरुद्ध चित्त को चींटी की संज्ञा दी जाती है। चित्त तो इतना बड़ा है जितना संसार! तुलसीदास जी कहते हैं–

असन, बसन, पसु बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे॥

(विनय-पत्रिका, 124)

असन माने भोजन; बसन माने वस्त्र, विविध प्रकार की सामग्री, सवारी-साधन, इज्जत-प्रतिष्ठा, बाग-बगीचा, खेत-क्यारी– यह सबकुछ एक मूल्यवान मणि में अंतर्निहित है। उससे सभी वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं, ठीक इसी तरह से मन के अंतराल में स्वर्ग-नरक, चर और अचर, सम्पूर्ण लोक विद्यमान है। **'चिदविलास जग'**– जगत् इस चित्त का विलास है। चित्त इतना बड़ा है जितना संसार है। विधाता की सृष्टि इस चित्त में समायी है। जब जिसका क्रम आता है यह चित्त वही आकार फेंकता रहता है। किन्तु सद्गुरु की शरण में सतत् अभ्यास करते-करते प्रकृति का आवरण शान्त होने लगता है, शब्द मात्र रह जाता है। उस समय चित्त इतना सूक्ष्म हो जाता है

जितना बारीकवाली चींटी। लेकिन अभी चित्त जिन्दा है। निरुद्ध चित्त भी जब शान्त हो जाय, परमात्मा में समाहित हो जाय, यह है चित्त का मरना! स्थिर चित्त योगी का जब चित्त भी मर जाय–

मन मरा माया मरी, हंसा बेपरवाह।
जाका कछू न चाहिए, सोई शाहंशाह।।

जहाँ मन मरा तो माया मर गयी क्योंकि माया जिस पर अंकित होती थी वह धरालत था मन! जब वही मिट गया तो माया कहाँ असर करे? माया टिके कहाँ? मन मरा तो माया मरी! '**हंसा बेपरवाह**'– उस समय हंस निश्चिन्त हो जाता है। '**संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।।**' *(रामचरितमानस, 1/6)*– मन मरते ही साधक निश्चिन्त हो जाता है। '**जाका कछू न चाहिए, सोई शाहंशाह**'– यदि भगवान अलग हैं तो चाह अवश्य होगी अर्थात् वह परमात्मा भी अब भिन्न न रहा, अतः–

दुःख हरे सुख को दिये, मन का कर दे अन्त।
कह कबीर कब मिलहिंगे, परम सनेही सन्त।।

यह मन के मिटने-मिटानेवाली योग्यता भी अपने बस की नहीं है, सद्गुरु की देन होती है। दुःख को तो हर लें, बदले में सुख प्रदान कर दें और मन का निरोध मात्र न करें बल्कि मन को मार डालें– ऐसे परम सनेही संत कब मिलेंगे? वही सन्त परम सनेही हैं जिनका अपना स्वयं का मन मिट गया हो और आपके भी मन को शनैः-शनैः पकड़कर मिटा सकते हों क्योंकि आज चित्त निरुद्ध है तो कल फिर पनप सकता है इसलिये चित्त ही समाहित हो जाय। यह निरुद्ध चित्त भी जहाँ मृतप्राय हुआ, मर गया, परमात्मा के रूप में समाहित हो गया तो '**नौ लख गीध अघायँ**'। '**नवद्वारे पुरे देही**' ***(गीता, 5/13)*** इनके द्वारा विषयोन्मुख प्रवाह की लाखों प्रवृत्तियाँ हैं, तरंग पर तरंग लगी है। किसी भी योनि में इन दरवाजों से भोग भोगकर जीवात्मा आज तक तृप्त नहीं हुआ। यह जीव तृप्त होता है जिसकी यह

सन्तान है, अपने ही उद्‌गम परमात्मा का दर्शन, स्पर्श और स्थिति पाने पर! इसके पूर्व–

कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं।।

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं।।

(रामचरितमानस, 7/95/8-9)

विगत जन्मों का अपना संस्मरण सुनाते हुए कागभुशुण्डिजी कहते हैं– गरुड़ जी! ऐसी कौन-सी योनि है जहाँ सुख के लिये मैं बार-बार न जन्मा। वहाँ हमने सभी कर्म करके देख लिये, इन्द्रियाँ सदैव अतृप्त रहीं, मन सदैव भूखा रहा। लेकिन यह निरुद्ध चित्त जहाँ शान्त हुआ, परमात्मा में समाहित हो गया, ईश्वर का प्रवाह चतुर्दिक छा गया तो **'नौ लख गीध अघायँ'**– इन्द्रियों की लाखों प्रवृत्तियाँ सदा-सदा के लिये तृप्त हो जाती हैं; और,

कुछ खइले कुछ भुइयाँ गिरवले, कुछ छकड़न ले जायँ।।

अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।

'कुछ खइले' अर्थात् वर्तमान, **'कुछ भुइयाँ गिरवले'** अर्थात् भूत और **'कुछ छकड़न ले जायँ'** अर्थात् भविष्य; इस प्रकार जीव भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में तृप्त हो जाता है। जैसा कि वैदिक ऋषियों की अनुभूति है–

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

पूर्ण में से पूरा का पूरा दान देने पर भी शेष पूर्ण ही बच रहता है। इसी आशय को सन्त कबीर इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं कि निरोध चित्त भी जब समाहित हुआ तो इन्द्रियों की लाखों प्रवृत्तियाँ, जो किसी भी योनि में कभी तृप्त नहीं हुई थीं; बहुत सी अट्टालिकाएँ उठाईं, चक्रवर्ती कहलाये, कभी मन का पेट नहीं भरा; वह चित्त के मिटते ही सदा-सदा के लिये तृप्त हो गयीं क्योंकि चित्त के मिटते ही माया का अस्तित्व मिट गया, प्रकृति

पुरुषोत्तम में परिवर्तित हो गयी, 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' की स्थिति आ गयी। ऐसे महापुरुष की रहनी कैसी होती है? इस पर कहते हैं–

संतोष तखत पर जन राजा, विवेक लगी दरबानी॥

समाज में सन्तोष शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होने लगा है। घी गिर गया तो कहते हैं– 'बेटा, संतोष कर ले! सूखा ही खा ले!' इस साल फसल अच्छी थी लेकिन ओले पड़ गये। किसी के खलिहान में आग लग गई, लोग सान्त्वना देते हैं– भैया! सन्तोष करो, दैव आगे देगा न!' यह कोई सन्तोष नहीं है, परिस्थिति से समझौता मात्र है। संतोष का अर्थ है– पूर्ण तृप्ति। '**आठवँ जथा लाभ सन्तोषा।**' *(रामचरितमानस, 3/35/4)*– भक्ति के नौ सोपानों में से आठवें स्तर पर लाभ मिलने लगा। साधक जिसे खोजता था, उस प्रभु का लाभ मिलने लगा, सन्तोष आने लगा। अतः जहाँ निरुद्ध चित्त भी मिटा, जो सम है, जिसमें विषमता नहीं है, उससे तोष मिलने लगा तो जो आज तक जन था, सेवक था, आज वह राजा अर्थात् स्वामी हो गया। कारण कि '**जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।**' *(रामचरितमानस, 2/126/3)*– भगवन्! तुम्हें जानकर जाननेवाला तुम ही हो जाता है। सेवक खो जाता है, स्वामी ही शेष बचता है।

एक शब्द सम शब्द ताकर जानै भेऊ।
नानक ताका सर नवै सोइ निरंजन देऊ॥

वह निरंजन देव की स्थितिवाला हो गया। '**विवेक लगी दरबानी**'– सत्य क्या है? असत्य क्या है?– इसकी पहचान और फिर सत्य पर आरूढ़ रहने की क्षमता का नाम विवेक है। इस महापुरुष के यहाँ ऐसे विवेकियों का दरबार लगा रहता है। शराब-जुआ जैसे व्यसनवाले वहाँ नहीं पहुँचते।

जगमग ज्योति जले घट भीतर मुक्ति भरे जहँ पानी॥
रे अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा॥

परमात्मा ज्योतिर्मय है। जैसा कि भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा–

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। *(गीता, 5/6)*

प्रभु को न सूर्य प्रकाशित करता है न चन्द्रमा और न अग्नि ही! वह स्वयं प्रकाशस्वरूप, ज्योतिर्मय है। सद्गुरु के सान्निध्य में साधक पहले बरियाई चला। फिर चित्त का निरोध हुआ। निरुद्ध चित्त भी जब मिट गया तब सम से तोष मिला। वही सेवक स्वामी बन गया, द्रष्टा स्वरूप में स्थित हो गया, जन राजा हो गया, विवेकियों का दरबार लगा और उस महापुरुष की रहनी क्या? **'जगमग ज्योति जले घट भीतर'**– ज्योतिर्मय परमात्मा हृदय में सदा एकरस जगमगाने लगा। वह ज्योति न घटती है न बढ़ती है, न उसके लिये ईंधन लगना है। भौतिक उपकरणों के बिना ही उसका अंतःकरण प्रकाशित रहता है।

'मुक्ति भरे जहँ पानी'– मुक्ति ऐसे महापुरुषों की सेवा करती है। मुक्ति का कार्य केवल इतना है कि जो विवेकी महापुरुष के संसर्ग में आये उनको तृप्ति प्रदान करे, उनकी प्यास बुझाये, मोक्षपर्यन्त दूरी तय कराये! पूज्य गुरु महाराज कहते थे– "हो! दुनिया में सब दानी ही तो बने हैं– 'हाथी श्वान लेवा देई।'– कुत्ता देकर बदले में हाथी माँगते हैं। असली दाता तो मैं हूँ जो मोक्ष का दान देता हूँ।" यह क्षमता केवल उन सत्गुरुओं में होती है जो समत्व से तृप्त हैं, जो जन से स्वामी की स्थिति में आ गये हैं, जिनके हृदय में जगमग ज्योति सदा जलती रहती है। उन्हीं के यहाँ मुक्ति सेविका-रूप में रहती है कि उनके यहाँ जो विवेकी आया, उसकी श्रद्धा और संस्कार के अनुपात में मुक्ति की आपूर्ति करें। ऐसे महापुरुषों के यहाँ आप मुक्ति चाहें न चाहें, मुक्ति स्वतः संचारित हो जाती है, मुक्ति के संस्कारों का सूत्रपात् हो जाता है। कागभुशुण्डि जी के आश्रम में हंस पहुँचते थे। कबीर कहते हैं– वहाँ विवेकियों का दरबार लगा रहता है। मदिरा पीनेवाले वहाँ नहीं बैठेंगे क्योंकि वहाँ मिलती ही नहीं! अन्त में कहते हैं–

सुन्ने आइल सुन्ने गइले, सुन्न भइल परवेसी।

भारतीय जनश्रुतियों में है कि स्वामी विवेकानन्द धर्म संसद में भाग लेने शिकागो (अमेरिका) गये। वहाँ के व्यवस्थापकों ने सोचा, 'गुलाम देश का पादरी संन्यासी! धर्म के विषय में यह क्या बतायेगा? इन्हें कौन-सा विषय दिया जाय! अच्छा तो होगा कि इनसे प्रश्न ही न किया जाय! उन्होंने बोर्ड पर उनके लिये जीरो लगा दिया।' विवेकानन्द असमंजस में पड़े, आँख बन्द करके गुरु महाराज का ध्यान किया। रामकृष्ण परमहंस जी ने ध्यान में ही दर्शन देकर कहा– तू घबड़ाता क्यों है! तू अपनी बात कर। बोलूँगा तो मैं! निर्द्वन्द्व होकर विवेकानन्द ने बोलना आरम्भ किया कि 'जीरो इज गाड!'

वस्तुतः चित्त इतना बड़ा है जितना बड़ा संसार; किन्तु योग-साधना के द्वारा यह संयत होकर संकल्प-विकल्परहित शून्य में अचल स्थिर ठहर जाता है। वहीं पर भगवान हैं। यह जीवात्मा उस परमात्मा का अंश है इसलिए शून्य से आता है। उस परमात्मा को ही उद्देश्य बनाकर भजन-साधन, भक्ति का मार्ग तय होता है– अन्य किसी को भजा भी तो नहीं जा सकता! उसी से अलग हुआ– **'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'**– वह शान्त है, सम है, हलन-चलन से रहित है। उसी से इसकी उत्पत्ति है और उसी को उद्देश्य बनाकर वहाँ तक का रास्ता तय किया इसलिए **'सुन्ने गइले'** और **'सुन्न भइल परवेसी'**– जब चित्त सब ओर से सिमटकर शान्त ठहर गया, शून्य की अवस्था आयी, लव भर के लिये उन चरणों में सुरत लग गई, तत्क्षण भगवान आपको अपनी विभूति प्रदान कर देते हैं। वह आपमें दृष्टि बनकर संचारित हो जायेंगे, सामने स्वयं खड़े हो जायेंगे। आप नहीं समझेंगे, तब भी समझा लेंगे। यही है **'सुन्न भइल परवेसी'**। फिर वह भगवान हैं कैसे? कबीर कहते हैं कि प्रकृति की तरह उनमें घट-बढ़ नहीं है–

कहत कबीर सुनो भाई सन्तो! कमी रही ना बेसी।।
रे अवधू! ऐसा ज्ञान न देखा।।

कबीर कहते हैं– जहाँ शून्य में प्रवेश मिल गया, स्थिति मिल गयी तो न कभी कमी आना है, न अधिक होना है। वहाँ घट-बढ़ नहीं है। जो

स्वयंसिद्ध है, सहज है, 'विधि न बनाये, हरि आप बनि आये' वह स्थिति मिल जाती है।

उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये आप सब किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष की शरण जायँ। आप घर बैठे शरण जायँ। उनके पास शरीर से जाने की बहुत जरूरत नहीं है। उनको आपने दो-एक बार देख लिया है, इतना पर्याप्त है। शरीर कहीं भी रहे, आप मन से आयें-जायें, सुबह-शाम उनके उपदेश के अनुसार अभ्यास करें। दो-चार मिनट नियम से उनका स्वरूप देख लिया करें। जिस दिन श्रद्धा से डोरी लगी, एक मिनट भी उनका स्वरूप हृदय में रोकते बना तो जिसका नाम अनुभव है, जिसे कहते हैं कि आत्मा रथी हो जाती है, भगवान रथी हो जाते हैं, भजन जागृत हो जाता है– यह सब जागृत हो जायेगा। भजन की जागृति का अन्य कोई उपाय है ही नहीं।

रामचरितमानस में प्रसंग आता है कि वनवासकाल में लक्ष्मण ने भगवान राम से पूछा– सुख का स्रोत क्या है? भगवान ने बताया–

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो सन्त होइँ अनुकूला।।

(रामचरितमानस, 3/15/3)

सम्पूर्ण सुख का मूल तो भक्ति है लक्ष्मण! किन्तु उसे सीधा मैं भी नहीं दे सकता। वह तभी मिलेगी जब सन्त अनुकूल हों। इसलिये कैसे भी वेष में सन्त आयें, उन्हें दो रोटी खिलाने से नहीं चूकना चाहिए। क्योंकि,

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ।।

(रामचरितमानस, 1/2/5-6)

कभी-कभी संत वेष में कालकेतु, कालनेमि भी पहुँच जाया करते हैं तो भी क्या कर लेंगे? वे बहुत करेंगे तो एक कम्बल चुरा ले जायेंगे। सेवा करनेवाले ने तो सन्त समझकर ही उसकी सेवा की है इसलिये संतों की सेवा से चूकना नहीं चाहिए। साधुसेवा से कल्याण ही होता है–

साधु ते होइ न कारज हानी।

देवर्षि नारद के सम्बन्ध में ऐसी ही प्रसिद्धि है कि जहाँ उनका सत्संग होता, किसी न किसी खुराफात की योजना वह बना ही देते थे। एक बार रुक्मणी देवी को अहंकार हो गया कि हमारे बराबर भक्त भला कौन है? नारद जी को इस कमजोरी का पता चला तो उनके पास पहुँच गये और कहा– रुक्मणी जी! आप चाहे जितनी आत्म-प्रशंसा कर लें, भगवान के हृदय में स्थान तो गोपियों का है! आपका स्थान तो शून्य है, न के बराबर है।

रुक्मणी ने कहा– अरे नहीं नारद जी! मैं मूर्धाभिषिक्त नरेश भीष्मक की कन्या! मेरी इतनी तपस्या न होती तो भगवान स्वयं चलकर हमारे यहाँ क्यों जाते? हमें वहाँ से वरण कर क्यों लाते? नारद ने कहा– रुक्मणी जी! कुछ भी कह लें लेकिन सभा-सोसाइटी में, इष्ट-मित्रों में भगवान के मुख से जब भी निकलता है तो 'गोपियाँ....राधिका....गोपियाँ....।' बस! आपका नाम तो हमने कभी सुना नहीं। प्रभु के हृदय में गोपियों की तुलना में आप का स्थान दस प्रतिशत भी नहीं है।

इतना सुनते ही रुक्मणीजी तैश में आ गयीं। उसी आवेश में उन्होंने आभूषण इधर फेंका, दुपट्टा उधर फेंका, बाल छिटकाया और चल पड़ीं कोपभवन की ओर! जनसामान्य परिवार में कोई नाराज होता है तो सबके सामने ही रोना शुरू कर देते हैं। राजा-महाराजाओं के यहाँ सबके सामने रुलाई होने लगे तो राज-काज चौपट हो जाय। यदि वहाँ नाराजगी प्रकट करना है तो जायें कोपभवन!

रुक्मणी जी कोपभवन की ओर चल पड़ीं। भगवान श्रीकृष्ण की दृष्टि पड़ गयी। वह बोले– आज तो कुछ अलग ही दृश्य है। कहीं नारद जी की दृष्टि तो नहीं पड़ गयी? सेवकों ने बताया– हाँ भगवन्! आज नारद जी ही अतिथि थे, खूब सत्संग चला है। श्रीकृष्ण ने कहा– तब तो शीघ्रता करो। दो-चार रजाई ले आओ। सेवक दौड़ पड़े। रजाइयाँ आ गयीं। उनको ओढ़कर भगवान लगे डुग-डुग काँपने! राजवैद्य की दवा से भी आराम नहीं मिला।

समाचार रुक्मणीजी तक भी पहुँचा कि भगवान असाध्य रोग से पीड़ित हैं। रुक्मणी ने सोचा– कोपभवन में जिन्हें हमें नाराजगी दिखानी थी उन्हें तो अब-तब लगा है। पहले वह स्वस्थ हो लें, तब कोपभवन अटेन्ड करना उचित होगा। वह भगवान के पास आ गयीं। नारद जी भी पहुँच गये, पूछा– भगवन्! क्या हो गया?

भगवान ने कहा– कुछ पूछो मत नारद! बड़े मौके से पहुँच गये हो। लगता है मेरा अंतिम समय आ गया है। नारद ने कहा– प्रभो! हुआ क्या है? भगवान ने कहा– नारद! यह मस्तिष्क ज्वर है। इसके उपचार का आविष्कार आज तक हुआ ही नहीं। नारद जी बोले– प्रभो! कोई तो इलाज होगा? भगवान ने कहा– नारद! इलाज तो नहीं है। एक उपाय है। यदि कोई अपना पुण्य दान कर दे तो जान बच सकती है। नारद ने पूछा– प्रभो! वह कैसे होगा? श्रीकृष्ण ने कहा– मुझमें स्नेह रखनेवाली कोई रानी अपनी पवित्र चरणधूलि दे दे और मैं सिर पर धारण कर लूँ तो उस पुण्य से प्राण बच सकते हैं। अन्य कोई दवा नहीं है।

नारद जी रुक्मणी, जामवन्ती, सत्यभामा इत्यादि आठों पटरानियों की ओर घूम पड़े और बोले– जल्दी चरणधूलि दो। वे सब की सब पीछे हट गयीं और बोलीं– नारद जी! यह हमारे पूज्य हैं। इनकी चरणधूलि हम अपने सिर पर रखती हैं। हम अपनी चरणधूलि इन्हें सिर पर रखने के लिए कैसे दे सकते हैं? कल को लोग क्या कहेंगे कि रानियाँ अब सिर पर पाँव रखकर चलने लगी हैं। मर्यादा भी तो कुछ होती है नारदजी!

नारद ने कहा– आपको मर्यादा की पड़ी है, यहाँ जान जा रही है। आप सबको वैधव्य सहना पड़ सकता है। रानियाँ बोलीं– नारद! भाग्य का लिखा कौन टाल सकता है? रुक्मणी पीछे हट गयीं। श्रीकृष्ण ने और भी कड़वा मुँह बनाया, रुआँसे होकर बोले– नारद! वृन्दावन चले जाओ। कदाचित् किसी को तरस आ जाय।

नारद वृन्दावन की ओर भागे। वहाँ उन्होंने देखा– राधिका के संरक्षण में करील के कुंजों में बैठकर गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग में कीर्तन कर रही थीं। उन्होंने नारद को देखा तो उठ खड़ी हो गयीं। गोपियों ने नारद जी को सादर प्रणाम किया और कहने लगीं– ''देवर्षि! आप तो भ्रमणशील हैं। कहीं मेरे कन्हैया को देखा।''

नारद बोले– हाँ, वहीं से तो आ रहा हूँ। कैसे हैं कन्हैया?– उन्होंने पूछा। नारद ने कहा– अभी तो ठीक हैं, लौटकर जाने पर उनसे भेंट हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। गोपियों ने कहा– बात क्या है, वे स्वस्थ तो हैं? नारद ने कहा– वह अत्यन्त बीमार हैं, साँस आ-जा रही है, अब-तब लगा है! गोपियों ने कहा– नारद जी! व्यर्थ की बातें न करें। यह बतायें कि हमलोगों लायक कोई सेवा तो नहीं है?

नारद ने कहा– आपकी चरणधूलि माँगा है। शायद उससे उनके प्राण बच जायँ। तुरन्त सब गोपियाँ रमण-रेती में पाँव पीटने लगीं। कहीं पाँव के स्पर्श के बिना कोई कण चला न जाय अन्यथा इन महापुरुष को मिट्टी ढोनी पड़ेगा और हमें पाप लगेगा। एक गोपी दौड़कर, खोजकर बड़ा-सा चीनीवाला बोरा ले आई, चरणधूलि से बोरा भरा और सबने उसे उठाकर नारद जी के सिर पर रख दिया।

नारद ने कहा– भगवान इसे अपने सिर पर रखेंगे, इसका भी तो विचार कर लो। इससे आपलोगों को नरक जाना पड़ सकता है। आपका परलोक नष्ट हो सकता है। राधिका ने कहा– नारद जी! समय नष्ट न करें। प्रभु जिएँ, प्रभु खुश रहें, हम अनन्तकाल तक नरक में रहें! बस, आप शीघ्र जायँ। बातों में आप जितना समय नष्ट कर रहे हैं उतना ही प्रभु को कष्ट हो रहा होगा। नारद सीधे भागे। वीणा ढोनेवाले बाबा; भेंट हो गई चीनीवाले बोरे से। वह भी रेतीली मिट्टी से भरा! किसी तरह काँखते-कूँखते वे द्वारका पहुँचे, बोरा पटकते हुए कहा– लीजिये चरणधूलि! भगवान उठकर बैठ गये, चरण-रज अपने सिर पर डाल लिया और बोले– नारद! इन पटरानियों और गोपियों का भला कौन मुकाबला! गोपियों की चरणधूलि मेरी चरणधूलि है।

गोपियों में मै हूँ और वे मुझमें हैं, वे मेरा ही स्वरूप हैं। वे स्वरूपस्थ हैं। इन बेचारियों को तो अभी एकाध जन्म भटकना पड़ेगा।

उस दिन से रुक्मणी का अहं तिरोहित हो गया, भक्ति का अहंकार चला गया। पहले तो अपने बनाव-श्रृंगार में ही समय व्यतीत करती थीं, इधर-उधर चहलकदमी ही करती रहती थी, कोई सेवा नहीं करती थी, भक्त शिरोमणि जो ठहरी! किन्तु उस दिन से झाड़ू-चौका सबकुछ अपने हाथों करतीं। उस दिन से भगवान की गृहस्थी सुधर गई। आज कोई आपके घर में कुटिलता के बीज बोता है तो आप उससे मुँह फुला लेंगे। नारद ने तो श्रीकृष्ण का घर ही बिगाड़ दिया था किन्तु श्रीकृष्ण ने उनसे मुँह नहीं फुलाया बल्कि कहा– नारद! बड़े मौके से आये हो! बैर से बैर बढ़ता है। प्रेम से सदा के लिये बैर की धुलाई हो जाती है। नारद जी आये थे आपस में बिगाड़ कराने; किन्तु रुक्मणी का भी कल्याण हो गया, गोपियों की महिमा स्थापित हो गई। नारद की श्रद्धा बढ़ गयी और भगवान की गृहस्थी सँवर गयी। पहले रुक्मणी भोजन की थाल भी भगवान के पास नहीं ले जाती थीं, दासियों से संकेत से भेजती थीं; अब काफी लेकर स्वयं दौड़ने लगीं।

इसलिए माताओं को चाहिए कि अपने कर्त्तव्य का पालन करें। कर्त्तव्य-पालन का ही नाम जीवन है। कर्त्तव्य-पालन से ही शुभ संस्कारों का सृजन है। बैठकर जीवन काटने की अपेक्षा सेवा मूल्यवान् है। माताओं को घर में भजन-कीर्तन करना-कराना चहिए। इससे मासूम बच्चे-बच्चियों में सात्त्विक संस्कारों का उदय होता है। सेवा में कटौती नहीं करनी चाहिए। बड़ों का अदब और छोटों से स्नेह– यदि इतना व्रत कोई ले ले तो घर में सदैव सुख और शान्ति रहेगी। यदि टिन्न-टिन्न करके बिस्तर पर पड़े रहे तो दो दिन, चार दिन, दस दिन तो लोग सहन करेंगे; फिर आपका जीवन नरक और पूरे परिवार का भी जीवन नरक हो जायेगा। सन्त-सत्पुरुषों की सेवा और प्रभु के दो-ढाई अक्षर के किसी नाम का स्मरण सुखी जीवन की आधारशिला है।

!! ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय !!

हमारे प्रकाशन

योगशास्त्रीय प्राणायाम -
योगशास्त्रीय प्राणायाम में आपने बताया है कि यम, नियम और आसन के सधते ही श्वास-प्रश्वास का शान्त प्रवाहित होना ही प्राणायाम है। अलग से प्राणायाम नाम की कोई क्रिया नहीं है। यह योग चिन्तन की एक अवस्था है। इसी का समाधान इस पुस्तक में किया गया है।

३ भाषाओं में

बारहमासी -
अपने पूज्य गुरु श्रीपरमानन्द जी महाराज को आकाशवाणी से प्राप्त भजन (ईश्वरीय गायन) बारहमासी का संकलन एवं उसकी व्याख्या की है। इसमें प्रवेशिका से लेकर पराकाष्ठा तक लक्ष्य की ओर बढ़ने का पथप्रदर्शन किया गया है।

हिन्दी भाषा में

योगदर्शन-
प्रत्यक्षानुभूत व्याख्या -
महर्षि पतञ्जलिकृत इस पुस्तक में बताया गया है कि 'योग' प्रत्यक्ष दर्शन है यह लिखने या कहने में नहीं आता। क्रियात्मक चलकर ही साधक समझ पाता है कि जो कुछ महर्षि ने लिखा है उसका वास्तविक आशय क्या है? साधनोपयोगी पुस्तक है।

४ भाषाओं में
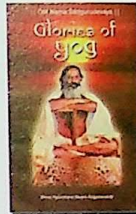
ग्लोरिस आफ योग -
हठ, चक्र, भेदन और योग, प्राणायाम, ध्यान के बारे में पूर्ण परिचय,

अंग्रेजी भाषा में

प्रश्न समाज के-
उत्तर गीता से -
इस पुस्तिका में सामाजिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक कैसे भी प्रश्न हों, उनका गीता के आलोक में समाधान किया गया है।

हिन्दी भाषा में

अहिंसा का स्वरुप -
अहिंसा एक उलझा हुआ प्रश्न है। मूलत: यह यौगिक, आन्तरिक साधना का शब्द है। इस पुस्तक में हम पायेंगे कि हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अहिंसा को किस संदर्भ में लिया है।

४ भाषाओं में
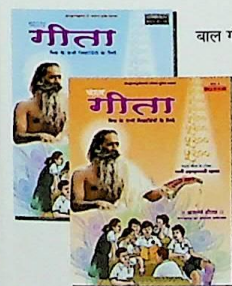
बाल गीता-

यह पुस्तिका बालक के निर्मल मन में एक परमात्मा के प्रति पूर्ण आकर्षण पैदा कर समाज एवं साधना के क्षेत्र में सहज प्रवेश के लिए उपयोगी है। इसमें समर्पण का पाठ्यक्रम अंकित है जिससे बच्चों में धर्म-सन्देश का बीजारोपण, संस्कार पड़ेंगे। वे इस राह पर चलेंगे और अपने ही भगवत्-स्वरूप को प्राप्त कर लेंगे।

४ भाषाओं में

भजन से लाभ (नवयुवकों की जिज्ञासाएँ) -
इस पुस्तिका में नवयुवकों के अनेक प्रश्नों का संक्षेप में समाधा[न] करते हुए भजन की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है।
यदि एक परमात्मा में मानसिक स्तर से लगते बन गया तो उन [...] के संरक्षण में साधना चलती रहेगी, वाह्य कार्यों में भी मदद मि[...] और आवागमन से मुक्ति तो मिलना ही है क्योंकि ईश्वर-पथ में आरम्भ का नाश नहीं होता।

हिन्दी भाषा में

MP3 ऑडियो सिडिज्

११ भाषाओं में

श्री स्वामीजी के मुखारविन्द से नि:सृत अमृतवाणियों का संकलन वाल्यूम १ से ६० तक।
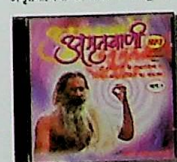
हिन्दी भाषा में

'श्रीमद्भगवद्गीता' की साधना

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।। (१३/२२)

वह पुरुष **'उपद्रष्टा'**– हृदय-देश में बहुत ही समीप, हाथ-पाँव-मन जितना आपके समीप है उससे भी अधिक समीप द्रष्टा के रूप में स्थित है। उसके प्रकाश में आप भला करें, बुरा करें, उसे कोई प्रयोजन नहीं है। वह साक्षी के रूप में खड़ा है। साधना का सही क्रम पकड़ में आने पर पथिक कुछ ऊपर उठा, उसकी ओर बढ़ा तो द्रष्टा पुरुष का क्रम बदल जाता है, वह **'अनुमन्ता'**– अनुमति प्रदान करने लगता है, अनुभव देने लगता है। साधना द्वारा और समीप पहुँचने पर वही पुरुष **'भर्ता'** बनकर भरण-पोषण करने लगता है, जिसमें आपके योगक्षेम की भी व्यवस्था कर देता है। साधना और सूक्ष्म होने पर वही **'भोक्ता'** हो जाता है। **'भोक्तारं यज्ञ तपसाम्'**– यज्ञ, तप जो कुछ भी बन पड़ता है, सबको वह पुरुष ग्रहण करता है। और जब ग्रहण कर लेता है, उसके बाद वाली अवस्था में **'महेश्वरः'**– महान् ईश्वर के रूप में परिणत हो जाता है। वह प्रकृति का स्वामी बन जाता है; किन्तु अभी कहीं प्रकृति जीवित है तभी उसका मालिक है। इससे भी उन्नत अवस्था में वही पुरुष **'परमात्मेति चाप्युक्तो'**– जब परम से संयुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार शरीर में रहते हुए भी यह पुरुष आत्मा **'परः'** ही है, सर्वथा इस प्रकृति से परे ही है। अन्तर इतना ही है कि आरम्भ में यह द्रष्टा के रूप में था, क्रमशः उत्थान होते-होते परम का स्पर्श कर परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है।

– 'श्रीमद्भगवद्गीता' भाष्य 'यथार्थ गीता' से साभार

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं. ५, मोगरा लेन
(रेल्वे सब-वे के पास), अंधेरी (पूर्व), मुंबई - ४०००६९, भारत
दुरध्वनी - ०२२-२८२५५३००
ई-मेल - contact@yatharthgeeta.com वेबसाइट - www.yatharthgeeta.com